अंक 10

मार्च, 2024

WWW.VITHIKA.ORG

अज्ञेय
विशेषांक

प्रिय, मैं तुम्हारे ध्यान में हूँ !

वीथिका ई -पत्रिका

साहित्य,संस्कृति, कला और विज्ञान को समर्पित

वीथिका ई पत्रिका

संपादक मंडल

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

चित्रा मोहन
मुख्य सलाहकार संपादक

सुमित उपाध्याय
प्रबंध संपादक

वीथिका परिवार

संरक्षक समिति
प्रो. विनय मिश्र
प्रो. प्रभाकर सिंह
डॉ. बिपिन कुमार मिश्र

वरिष्ठ सलाहकार संपादक
डॉ. आशुतोष तिवारी

वरिष्ठ सह संपादक
डॉ. सुधांशु लाल

वेब डिज़ाइन
रोशन भारती

प्रकाशक
उज्जवल उपाध्याय
यशिका फाउंडेशन, मऊ

संपादकीय समिति

डॉ मोहम्मद ज़ियाउल्लाह
डॉ अरुण कुमार सिंह
डॉ धनञ्जय शर्मा
श्री मनोज कुमार सिंह
एड. सत्यप्रकाश सिंह
श्री बृजेश गिरि
श्री नन्दलाल शर्मा

कवर पेज संपादक
अर्चिता उपाध्याय

कार्टून संपादक
कृतिका सिंह

सलाहकार परिषद
डॉ अखिलेश पाण्डेय
डॉ शिवमूरत यादव

UDYAM-UP 55 0010534

vithikaportal@gmail.com

www.vithika.org

वीथिका ई -पत्रिका

पत्रिका में छपे सभी लेख
लेखक के अपने विचार हैं

आपकी वीथिका

अंक 10

मार्च , 2024

गलियों की बात	सम्पादकीय	04
अज्ञेय : स्केच आर्ट	डॉ धनञ्जय शर्मा	05
अज्ञेय असीम हैं	डॉ. नमिता राकेश	06
अज्ञेय के गद्य को पढ़ते हुए	प्रो. विमलेश कुमार मिश्र	09
'हरी घास पर क्षण भर'	प्रो. विवेक कुमार मिश्र	13
भवंती, अन्तर और शाश्वती	डॉ. दिलीप शर्मा	17
भाषा वैशिष्ट्य और अज्ञेय	डॉ प्रियंवदा पाण्डेय	20
अज्ञेय का काव्य भाषा सम्बन्धी चिंतन	डॉ. नितिन सेठी	22
तारसप्तक में प्रयोगवाद की अवधारणा	डॉ धनञ्जय शर्मा	25
अज्ञेय की काव्य यात्रा	बृजेश गिरि	28
मेरी पसंद की अज्ञेय की कवितायेँ	डॉ नमिता राकेश	31
महिला दिवस : ब्लैक पेज		32
प्रेम में पार्वती होना	रश्मि धारिणी धरित्री	33
सतोपंथ हिमानी	डॉ एस पी सती	35
लोक कथा :जलांध	गीता कैरोला	36

गलियों की बात

मार्च , 2024

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन “अज्ञेय” का जन्म 7 मार्च, 1911 ई. को कसया, कुशीनगर में पुरातत्व विभाग के कैंप में हुआ, वहीँ जहाँ महात्मा गौतम बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ था. बौद्ध भिक्षुओं ने घोषणा की बालक “लामा” बनेगा.

अज्ञेय लामा नहीं बने, पर हिंदी ही नहीं वरन समूचे साहित्य जगत के अनन्य साधक बन कर उभरे. एक ऐसा साधक जिसने बिम्बों और शब्दों के प्रयोग को लेकर एक नयी रचना-प्रक्रिया को ही जन्म दे दिया.

एक क्रांतिकारी, एक सैनिक, एक प्रेमोपासक, एक संपादक एक कवि न जाने कितने रूपों में, माँ के लिए चुप्पा, क्रांति के लिए साइंटिस्ट, पत्रकारिता के लिए कुट्टीचातन, साहित्य के लिए अज्ञेय और स्वयं के लिए वात्स्यायन न जाने कितने नामों में यह साधक सतत अलग-अलग देश, प्रान्त, संस्कृति में यायावरी करता रहा.

वीथिका का यह अंक सबके अपने अपने अज्ञेय को समर्पित, जहाँ हमारी साधना में कमी होगी, आप सुधिजन अवश्य इंगित करेंगे इस विश्वास के साथ .....आपके समक्ष है अज्ञेय विशेषांक .....

“प्रिय ! मैं तुम्हारे ध्यान में हूँ ?”

अज्ञेय

SKETCH ART BY
DR DHANANJAY SHARMA , .
ASST -PROF. SPG COLLEGE, GHOSI

अ ज्ञे य अ सी म हैं

डॉ. नमिता राकेश
वरिष्ठ साहित्यकार
एवं उपनिदेशक, गृह मंत्रालय
नई दिल्ली

"पहाड़ नहीं कांपता,
न पेड़, न तराई,
कांपती है ढाल पर के घर से
नीचे झील पर झरी
दिए की लौ की
नन्हीं परछाईं"

इन पंक्तियों के रचयिता अपने समय के प्रसिद्ध प्रयोगवादी एवं नई कविता के जनक आदरणीय सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन अज्ञेय बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी और प्रखर कवि होने के साथ-साथ एक उम्दा फ़ोटोग्राफ़र भी थे और यायावरी तो शायद उनको सौभाग्य से ही मिली थी । अज्ञेय अपने समय के सबसे चर्चित कवि, कथाकार, निबंधकार , पत्रकार, संपादक, यायावर और अध्यापक रहे हैं । इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के कसया (आधुनिक कुशीनगर) में हुआ । बचपन लखनऊ, कश्मीर , बिहार और मद्रास में बीता। बीएससी करके अंग्रेज़ी में एमए किया। सच्चिदानंद जी ने घर पर ही भाषा , साहित्य, इतिहास और विज्ञान की प्रारंभिक शिक्षा आरंभ की। मैट्रिक की प्राइवेट परीक्षा पंजाब से उत्तीर्ण की। इसके बाद 2 वर्ष मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज में एवं 3 वर्ष लाहौर में संस्थागत शिक्षा पाई ।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन को "अज्ञेय"नाम मुंशी प्रेमचंद से मिला था । इसका ज़िक्रस्वयं अज्ञेय ने अपने एक साक्षात्कार में किया है। इस साक्षात्कार के अनुसार सच्चिदानंद ने जैनेंद्र कुमार के पास

अपनी रचनाएं प्रकाशन के लिए भेजीं। जैनेंद्र जी ने वे रचनाएं प्रेमचंद जी को दीं। इन कहानियों में से दो राजनीतिक कहानियाँ प्रेमचंद जी द्वारा स्वीकार कर ली गईं। कारावास से भेजी गई इन कहानियों के लेखक का नाम उजागर करना उपयुक्त नहीं था। इसलिए निर्णय लिया गया कि लेखक के नाम की जगह अज्ञेय (अर्थात अज्ञात) नाम का उपयोग किया जाए । जबकि अज्ञेय को यह उपनाम पसंद नहीं था हालांकि उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया था । वह कविताओं और कहानियों का प्रकाशन अज्ञेय नाम से कराते रहे जबकि लेख, विचार , आलोचना आदि के लिए उन्होंने अपने मूल नाम अर्थात सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन का ही उपयोग किया।

अज्ञेय, प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले कवि हैं। अनेक जापानी हाइकु कविताओं को अज्ञेय ने अनुदित किया है । अज्ञेय के प्रतीकों में पुराने प्रतीकों के नूतन अर्थ भी मिलते हैं। अज्ञेय के प्रतीकों में विविधता है । उनके प्रतीक नए भावबोध से आपूरित हैं। अज्ञेय ने प्रगतिवाद से असंतुष्ट होकर 'व्यक्ति स्वतंत्रता सिद्धांत" की स्थापना का अभियान यानी प्रयोगवाद चलाया। प्रयोगवाद की शुरुआत अज्ञेय के संपादन में वर्ष 1943 में "तार सप्तक" से हुई। "तार सप्तक" में विविध विचारधारा रखने वाले सात कवियों को एक साथ लिया गया तथा उन्हें "राहों के अन्वेषी" की संज्ञा प्रदान की गई।अज्ञेय को कविता में प्रयोगवाद का प्रवर्तन कहा जाता है । अज्ञेय को नई कविता धारा का भी पथ प्रदर्शक माना गया है । उनके संपादन में प्रकाशित "दूसरा सप्तक" और "तीसरा सप्तक" के नई कविता के प्रमुख कवि शामिल हैं।

अज्ञेय को अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार भी प्राप्त हुए। 1964 में "आंगन के पार द्वार" पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ । 1978 में "कितनी नावों में कितनी बार" शीर्षक काव्य ग्रंथ पर भारतीय ज्ञानपीठ का सर्वोच्च पुरस्कार मिला।

अज्ञेय की कविताओं में अगर हम काव्यगत विशेषताएं देखें तो हम पाएंगे कि अज्ञेय की कविताओं में प्रेम अभिव्यक्ति ज़्यादा गहरी और मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुई है किंतु आवेश इन शैली में की गई है जैसे--

"भोर बेला-- नदी तट की घंटियों का नाद
चोट खा कर जाग उठ सोया हुआ अवसाद
नहीं, मुझ को नहीं अपने दर्द का अभिमान-
मानता हूं मैं पराजय है तुम्हारी याद !

अज्ञेय के प्रेम प्रदर्शन में किसी प्रकार की बनावट अथवा दुराव नहीं मिलता । जीवन की नैसर्गिक मांगों को सर्वथा सहज रीति से व्यक्त होने देना चाहते हैं। अज्ञेय ने यदि कहीं पुराने उपमानों का प्रयोग किया भी है तो संदर्भ बदलकर उनका बासीपन दूर किया है । अज्ञेय की कविताओं में विद्रोह के स्वर भी साफ़ दिखाई देते हैं । राजनीतिक संबंध के कारण उन्होंने कारावास की काफी यात्राएं भी झेली है । उसके लिए उनकी विद्रोह की भावना प्रारंभिक कृतियों में बड़े दर्प के साथ व्यंजित हुई हैं। हरी घास पर क्षण भर में उनकी प्रसिद्ध कविता है । बावरा अहेरी और "दीप अकेला जलते रहे' में अज्ञेय की दृढ़ता, कर्तव्य निष्ठा और सामाजिकता के दर्शन होते हैं---

"यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर इसको भी पंक्ति को दे दो

प्रकृति का सजीव चित्रण----

अज्ञेय के काव्य में प्रकृति का सजीव अंकन हुआ है। यहां भी उनका दृष्टिकोंण रोमानी नहीं यथार्थवादी ही है। जिस चांदनी के सौंदर्य की महिमा अनेक कवियों ने अनेक रूपों में की है वही अज्ञेय चांदनी में भी यथार्थ का खोज लेते हैं । वस्तुत आज के नागरिक कवि के लिए प्रकृति के निरपेक्ष सत्ता पर मुक्त होना सहज नहीं रह गया है। एक तो वह जीवन के व्यस्त क्षणों में प्रकृति के पास जाने का अवकाश ही कब निकाल पाता है और जब प्रकृति के नयनभिराम दृश्य के सामने खड़ा होता है तब वहां भी उसके अवचेतन संस्कार और मानसिक संघर्ष उभरे बिना नहीं रहते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि अज्ञेय की काव्य रचना में आज के समय आज के समय का सजीव चित्रण मिलता है ।

अज्ञेय की काव्य भाषा--- अज्ञेय की भाषा प्रतीकात्मक है । उन्होंने भांति-भांति के प्रयोग से उसकी व्यंजकता बढ़ाने का प्रयास किया है । इस कार्य के लिए प्रतीक पद्धति का आश्रय सबसे उपयुक्त साधन है । कवि की इतयलन तक की काव्य भाषा तत्सम प्रधान है और उसका तेवर छायावादी क्योंकि काव्य भाषा का चरम निखार आंगन के पार द्वार में दिखाई पड़ता है जहां भाषा ऊपर से बिल्कुल सीधी और अलंकृत होती हुई भी भीतर से अत्यधिक संकेत निहित और मर्मस्पर्शी है ।

अज्ञेय की छंद योजना --छंद योजना की अगर बात करें तो अज्ञेय की छंद योजना में भी नवीनता है। चांद उनके काव्य में मात्र ढांचा नहीं भाव के उन्मेष का माध्यम है । कहीं-कहीं कवि ने लोकगीतों को भी आत्मसात किया है और कहीं उर्दू बेह्रों से प्रेरणा ली है । निराला और पंथ के बाद हिंदी कविता में सबसे अधिक छंद प्रयोग अज्ञेय ने किए हैं । इस प्रकार अज्ञेय नई कविता के यशस्वी पुरोधा हैं। और उनका काव्य हिंदी कविता का नवीनतम मानचित्र है।

अज्ञेय का रचना संसार इतना परिपक्व है, इतना समृद्ध है कि सबका अगर उदाहरण देने चलें तो कई पृष्ठ ऐसे ही भर जाएंगे । अज्ञेय ने अनेक कविता संग्रह, कहानी संग्रह, उपन्यास , यात्रा वृतांत, निबंध संग्रह, आलोचना, संस्मरण इत्यादि की रचना की है । उनके प्रमुख कविता संग्रहोंमें हरी घास पर क्षण भर, बावराअहेरी क्योंकि मैं उसे जानता हूं,आंगन के पार द्वार इत्यादि और कहानी संग्रह- विपत्ति का परंपरा कोठारी की बात इत्यादि, उपन्यास-- शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप इत्यादि , यात्रा वृतांत अरे यायावर याद रहेगा याद इत्यादि , निबंध संग्रह-- त्रिशंकु, आधुनिक साहित्य इत्यादि हैं ।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय का निधन नई दिल्ली में 4 अप्रैल 1987 को हुआ। ख़ास बात यह है कि अज्ञेय को आज भी उतनी ही शिद्दत के साथ याद किया जाता है जितना उनके समय में उनको याद किया जाता था । अज्ञेय जी की रचनाएं आज भी वर्तमान समय के परिपेक्ष में उतनी ही सजीव हैं , उतनी ही तार्किक हैं और उतनी ही समकालीन है जितनी वह अपने समय में थीं। यही अज्ञेय की कुशलता , दूर दृष्टि और परिपक्वता का प्रमाण है । मार्च के महीने में जन्मे अज्ञेय होली के रंगों की तरह ही विविध रंगों से बहुत भरपूर थे । आज हम उनको याद करके मानो एक युग को याद कर रहे हैं । अज्ञेय की रचनाओं को समझना वास्तव में एक परिपक्व और सूक्ष्म विवेचना करने वाले को ही आसान लग सकता है। उनकी रचनाओं में छिपे गूढ़ अर्थो , भावार्थों और व्यंग को समझना आसान नहीं है । अज्ञेय उस युग के कवि होते हुए भी इस युग में उतने ही लोकप्रिय हैं,सार्थक हैं , प्रसिद्ध हैं और आज भी उन्हें उतने ही मान सम्मान से देखा, पढ़ा और समझा जाता है।

अज्ञेय के गद्य को पढ़ते हुए.....

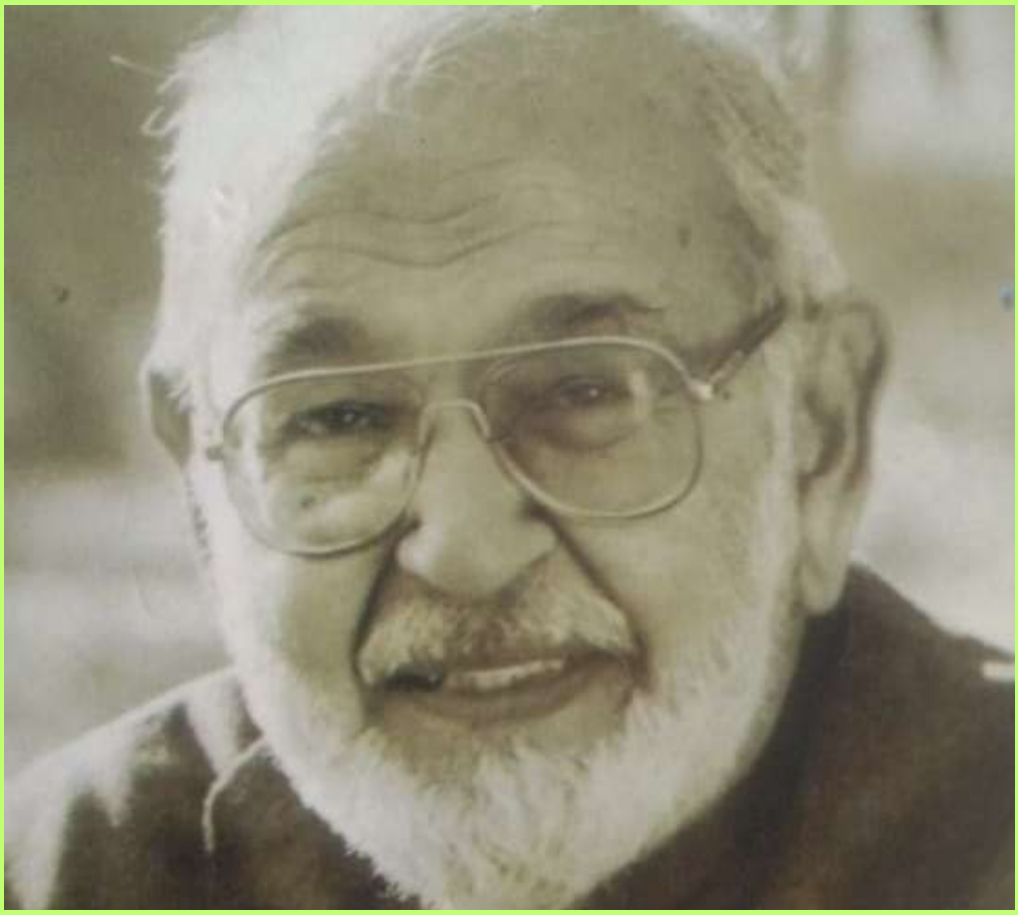

प्रो. विमलेश कुमार मिश्र
आचार्य,हिन्दी विभाग
दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

अज्ञेय तो अनेक हैं, मैं किस अज्ञेय की बात करूँ। क्या हिन्दी की कोई ऐसी परम्परा है, जिससे अज्ञेय जुड़ते हैं। हिन्दी में दो ऐसे कवि हैं जिनसे अज्ञेय अपने को प्रभावित मानते हैं, वे कवि हैं- मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' । अज्ञेय मनसा जुड़े थे- मैथिलीशरण गुप्त से। अज्ञेय के भीतर कितने अज्ञेय छिपे हैं, उस पर हमें विचार करना चाहिए।

अज्ञेय बहुत बड़े अनुवादक थे। उन्होंने कविता और गद्य दोनों क्षेत्रों में अनूठा अनुवाद किया है। 'ब्रेख्त' और 'रेलके का अनुवाद अज्ञेय ने किया है, जो विचारधारा के स्तर पर उनसे भिन्न थे। ब्रेख्त का अनुवाद करते हुए अज्ञेय ने भाषा को गढ़ा। अपने दुर्दम रचनाशीलता के कारण अज्ञेय आकर्षण के केन्द्र में रहे। अज्ञेय गहरे स्तर पर भावुक थे। इस इक्कीसवीं सदी में अज्ञेय के जीवन के विविध आयामों की चर्चा की जानी चाहिए और उन्हें नये सिरे से पहचानने का अब समय आ गया है। हमने अपने समय में जितनी अवज्ञा अज्ञेय की, की है उतना अन्य भारतीय भाषाओं के किसी भी कवि की नहीं हुई है। अज्ञेय पर समय-समय पर तमाम आलोचकों द्वारा विविध प्रकार के आरोप-प्रत्यारोप लगाये गये लेकिन अज्ञेय द्वारा लिखित साहित्य को गहराई से अध्ययन करने के उपरान्त हमें लगा कि उनके साहित्य का सही मूल्यांकन नहीं किया गया।

वस्तुतः अज्ञेय एक प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं, अज्ञेय के प्रयोगधर्मी रूप को देखकर उनको हिन्दी का रवीन्द्रनाथ टैगोर कहा जा सकता है, कविता को कवित्व से जोड़ने का प्रयास अज्ञेय ने किया साथ ही हिन्दी उपन्यास को पहली बार वैचारिकी से जोड़ा, वैज्ञानिक चेतना और अपनी परम्परा से लैस होकर अज्ञेय साहित्य-सृजन में रत रहे। स्वाधीनता, मूल्यबोध और मानव विवेक अज्ञेय के साहित्य चिन्तन के मूलाधार हैं। अज्ञेय में भारतेन्दु की तरह स्वाधीनता की तड़प, जयशंकर प्रसाद की बहुमुखी प्रतिभा और निराला की विद्रोही चेतना एक साथ दिखायी देती है। मनुष्य और बुद्धि की बात अज्ञेय बार-बार अपने साहित्य में करते हैं इसका अनूठा उदाहरण 'शेखर' में परिलक्षित होता है।

अज्ञेय का सारा चिन्तन हिन्दी साहित्य के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सबसे अधिक शब्द देने वाले दो लेखक हैं- हजारी प्रसाद द्विवेदी और अज्ञेय। अज्ञेय जैसे पुल देने वाले रचनाकार का सही मूल्यांकन करने का प्रयास हमें इस शतवार्षिकी में करना चाहिए। अज्ञेय *1924* से *1986* तक लगातार साहित्य सृजन करते रहे। अज्ञेय को विविध आयामी रचनाकर्म और विविध आयामी जीवन मिला था। अज्ञेय पर सी०आई०ए० के एजेन्ट से लेकर विहारी के अवतार तक का आरोप लगा लेकिन अब निविर्वाद रूप से अज्ञेय को लोग स्वीकार करने लगे हैं। अज्ञेय एक दुनिया इस तरह का बनाने का प्रयास कर रहे थे जिस पर किसी का दबाव काम नहीं करता इसीलिए प्रेम, विवाह और काम इन तीनों को केंद्रित रखा गया है- 'नदी के द्वीप' में। 'नदी के द्वीप' में एक ऐसे समाज की परिकल्पना की गयी है जहाँ कोई सामाजिक बंधन काम नहीं करता है। 'शेखर' और 'भुवन' एक ऐसे स्त्री से विवाह करना चाहते हैं जो विवाहित है ऐसा ये लोग इसलिए करना चाहते हैं कि दोनों पात्र विवाह का निषेध करते हैं। पुरूष - निर्मित नारियाँ होने के कारण ही 'रेखा' और 'गौरा' भुवन के पीछे-पीछे अपना जीवन बर्बाद कर देती हैं। 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय एक पात्र को इकहरे अंदाज में प्रस्तुत करते हैं।

अज्ञेय का तीसरा उपन्यास मृत्यु से साक्षात्कार को उद्घाटित करता है। उन्होंने अपने तीसरे उपन्यास में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों का संगमन किया है। 'सेलमा' द्वारा निश्चित मृत्यु को देखते हुए क्रिसमस मनाना इस बात का द्योतक है। अज्ञेय में पूर्वी और पश्चिमी प्रवृत्तियाँ सहजात हैं। अज्ञेय का सम्पूर्ण दर्शन अस्तित्ववादी है।

अज्ञेय कहीं भी साधारण नहीं हैं। कोई भी रचयिता तभी सार्थक होता है जब वह साधारण नहीं रह जाता। अज्ञेय साधारण पाठक के लिए न कवि हैं न साहित्यकार । अज्ञेय को जानने के लिए एक विशेष किस्म की योग्यता अनिवार्यतः होनी चाहिए। अज्ञेय का व्यक्तित्व बहु आयामी है। अज्ञेय *84* चीजों को बताते हुए कहते हैं कि मैं इनमें से किसी एक को आधार बनाकर अपनी आजीविका चला सकता था लेकिन साहित्य को प्रथम दृष्टया साधन बनाया। हाथ के श्रम पर अज्ञेय का सबसे बड़ा विश्वास था। 'गीत गोविन्द' और 'कामशास्त्र' की किताब पढ़कर अज्ञेय को 'प्रेम', 'विवाह' और

'काम' के प्रति भाव पैदा होता है। शेखर एक परम विद्रोही पात्र है, शेखर के कुछ चिन्तन भगत सिंह की याद दिलाते हैं। 'शेखर : एक जीवनी' का शेखर हमेशा अतृप्त ही रहता है। अतृप्त शेखर, भुवन के रूप में 'नदी के द्वीप' में पूर्ण होता है।

अज्ञेय के समर्थकों ने स्वयं अज्ञेय के समक्ष समस्या उत्पन्न किया। अधिमूल्यन व अवमूल्यन के कारण अज्ञेय का सही चेहरा सामने नहीं आ पाया। अज्ञेय, प्रसाद की परम्परा की अगली कड़ी हैं। कामायनी का मनु, और 'शेखर एक जीवनी' का 'शेखर' एक भाव भूमि पर दिखते हैं। नयी कविता के दौर में अज्ञेय ऐसे हैं जो शब्दों के कवि हैं और मुक्तिबोध वाक्यों के कवि। शब्द के प्रति सचेतनता और नये शब्दों के तलाशने की प्रवृत्ति से अज्ञेय पंत के नजदीक होते हैं। अज्ञेय *Political Poet* नहीं थे। उन्होंने अकेलेपन को पार करने के लिए सत्य का रास्ता अपनाया। प्रेम का इतना बड़ा विद्रोही कवि *20*वीं सदी में पैदा ही नहीं हुआ है। प्रेम के विद्रोह की कविता 'हरी घास पर क्षण भर' है। विद्रोह के परत के धरातल पर अज्ञेय की कविताओं का मूल्यांकन करना चाहिए। अज्ञेय की कविताओं पर विचार करते हुए प्रो० रेवती रमण ने कहा है कि अज्ञेय का कृत्तित्व असाध्य वीणा की तरह पड़ा हुआ है लेकिन मैं प्रियंवद नहीं हूँ। अज्ञेय उस दौर के कवि हैं जो यथार्थ को महसूस करते हैं। अज्ञेय का साहित्य परम्परा के अर्न्तद्वन्द्वों के तलाश का साहित्य है और उनकी अनुभूतियाँ नये मनुष्य की अनुभूतियाँ हैं।

अज्ञेय तोड़-फोड़ के साथ अंतःसलीला की भाँति विश्व संयोजन करने वाले कवि हैं। अज्ञेय के काव्य-संसार में सत्य का शोधन, विकल्प की तलाश और विश्व कविता में हिन्दी की प्रथम नागरिकता स्थापित की गयी है।

अज्ञेय साहित्य के मूल्यबोधी, मूल्यजीवनी और मूल्य निर्माण-चेतना का सृजन करने वाले साहित्यकार हैं। अज्ञेय शब्द की मदारीगिरी में विश्वास नहीं करते बल्कि वे शब्द और भाषा का प्रयोग बड़ी सतर्कता के साथ करते हैं। अज्ञेय का निबन्ध-साहित्य विचार-प्रधान है उनके निबंधों में गहरा विमर्श है। इस तरह सही अर्थों में अज्ञेय शब्द-साधक थे, वे साधना और सृजन की प्रतिभा का मूल्यांकन करते हुए स्वयं निष्कर्ष निकालने वाले रचनाकार थे, उनका स्रष्टा रूप बराबर सक्रिय रहा। दुनिया का बहुविध ज्ञान अज्ञेय को था उनके निबंध प्रसंग-गर्भत्व से भरे पड़े हैं, लोककथा, लोकभाषा से लेकर दुनिया का विविध ज्ञान और अनुभव का संसार उनमें था। अज्ञेय में स्वीकार और अस्वीकार का जबर्दस्त साहस था। दरअसल अज्ञेय सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की बात करने वाले साहित्यकार हैं। बिना स्वाधीन चेतना के कोई व्यक्ति स्वतंत्र नहीं हो सकता। अज्ञेय व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को स्वाधीन-चेतना सम्पन्न बनाने के पक्षधर हें इसी कारण वे व्यक्ति, समाज, व्यवस्था, भाषा और शिक्षा पर अपने विचार प्रमुखता के साथ व्यक्त करते हैं। व्यक्ति की गरिमा और उसकी स्वायत्तता को उजागर करने के लिए अज्ञेय निरन्तर व्यग्र दिखते हैं।

अज्ञेय में वैविध्यता क्यों है? इस बात पर हमें विचार करना होगा।

दरअसल अज्ञेय का लेखन स्वाधीन देश में एक नयी चेतना विकसित करने के लिए स्वाधीनता, विवेक, इतिहास की चेतना, परम्परा और रूढ़ि, संवेदना आदि की बात करता है। अज्ञेय भाषाई सतर्कता के साथ मनोलोक की चिन्ता करने वाले रचनाकार हैं। भाषाई चौकन्नापन जैसे अज्ञेय में है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अज्ञेय की मान्यता है- उन्माद से बचने के लिए सृजन अनिवार्य है। सृजन करने वाले को सर्जन, भाषा और मनुष्य की चिन्ता निश्चित ही होती है, मनुष्य के भीतर चेतना पैदा करने वाली भाषा का प्रयोग अज्ञेय अपने निबंधों में करते हैं। लेखक अविच्छिन्न परम्परा का वाहक होता है इसलिए उसके सम्पूर्ण विवेक को एक साथ पढ़कर उसका मूल्यांकन करना चाहिए। अनुभूमि के साथ अद्वैत का भाव पैदा करने वाली चेतना अज्ञेय की थी। वे हमेशा दूसरे की चिन्ता करने वाला मनुष्य बनाना चाहते थे। वे अज्ञेय की दृष्टि में स्वाधीनता का गहरा सम्बंध भाषा से बनता है। भाषा और संस्कृति के रिश्ते पर भी अज्ञेय पैनी नजर रखते हैं। अज्ञेय भाषा के अवमूल्यन का इन्कार करते हैं उनका मानना है कि भाषा में अवमूल्यन नहीं होता बल्कि दूसरी जगहों पर किये गये अवमूल्यन ही उसके कारण हैं। अज्ञेय बहुत सारी चीजों को एक साथ समेट लेने वाले साहित्यकार थे, व्यक्तित्व के खोज के कवि तो हैं ही व्यक्तित्व के विलयन के कवि भी हैं। विडम्बना यह है कि अज्ञेय का कोई घर नहीं था अंततः उन्होंने पेड़ पर अपना घर बनाया। यह विपर्यय उनका एक गुण था। अज्ञेय परम्परा में रहते हुए भी परम्परा के बाहर के रचनाकार हैं।

अज्ञेय पश्चिम के प्रति न तो आसक्त थे न ही अनासक्त। अज्ञेय पश्चिम और पूरब दोनों के बीच की बात करते हैं। पूरब और पश्चिम के मध्य कुछ साझी समताएं और विषमताएं अज्ञेय अपने यात्रावृत्त में ढूंढते हैं। अज्ञेय का मानना है कि पेरिसवासियों के बावजूद पेरिस असंवेदनशील शहर है। पेरिस हृदयहीन शहर है। इसके पीछे पेरिस की यांत्रिकता है। यूरोप दौड़ रहा है और इस दौड़ में वह अनुभव कर रहा है कि थोड़ा और दौड़े तो कुछ और पा जाएंगे। यह सारी स्थिति आज भारत के बारे में भी कहा जा सकता है। आज हम अंधी दौड़ में शामिल हो रहे हैं। यांत्रिकता में फंसते हुए मनुष्य को अज्ञेय बचाना चाहते थे। अज्ञेय फासिज्म का विरोध करने वाले रचनाकार हैं। फासिज्म और तानाशाही का विरोध करते हुए अज्ञेय लाउरो की चर्चा करते हैं। मुक्तिदूत लाउरो पर अज्ञेय अपने को केन्द्रित करते हैं। अज्ञेय सेना में इसलिए गये कि वे इस माध्यम से फासिज्म और तानाशाही का विरोध करना चाह रहे थे। पश्चिम की इतिहास दृष्टि को लेकर अज्ञेय थोड़े चिन्तित थे उनका मानना है कि जिस चिन्तन को पश्चिम अपनी उपलब्धि मानता है वह भारतीय काल चिन्तक के सामने टीकता ही नहीं है। उनका मानना है कि भारतीय चिन्तन में वे सारे मूल्य, मानदण्ड, प्रतिमान और सरोकार पहले से ही विद्यमान हैं जो पश्चिम-चिन्तन में बाद में आये।

´हरी घास पर क्षण भर ´

प्रो. विवेक कुमार मिश्र
प्रोफेसर - हिंदी विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय कोटा

आओ बैठें
इसी ढाल की हरी घास पर।
माली-चौकीदारों का यह समय नहीं है,
और घास तो अधुनातन मानव-मन की भावना की तरह
सदा बिछी है-हरी, न्यौती, कोई आ कर रौंदे।
आओ, बैठो
तनिक और सट कर, कि हमारे बीच स्नेह-भर का व्यवधान रहे, बस,
नहीं दरारें सभ्य शिष्ट जीवन की।
चाहे बोलो, चाहे धीरे-धीरे बोलो, स्वगत गुनगुनाओ,
चाहे चुप रह जाओ-
हो प्रकृतस्थ : तनो मत कटी-छँटी उस बाड़ सरीखी,
नमो, खुल खिलो, सहज मिलो
अन्त:स्मित, अन्त:संयत हरी घास-सी।
क्षण-भर भुला सकें हम
नगरी की बेचैन बुदकती गड्डु-मड्डु अकुलाहट-
और न मानें उसे पलायन;
क्षण-भर देख सकें आकाश, धरा, दूर्वा, मेघाली,
पौधे, लता दोलती, फूल, झरे पत्ते, तितली-भुनगे,
फुनगी पर पूँछ उठा कर इतराती छोटी-सी चिड़िया-
और न सहसा चोर कह उठे मन में-
प्रकृतिवाद है स्खलन
क्योंकि युग जनवादी है।
क्षण-भर हम न रहें रह कर भी :
सुनें गूँज भीतर के सूने सन्नाटे में किसी दूर सागर की लोल लहर की
जिस की छाती की हम दोनों छोटी-सी सिहरन हैं-
जैसे सीपी सदा सुना करती है।
क्षण-भर लय हों-मैं भी, तुम भी,
और न सिमटें सोच कि हम ने
अपने से भी बड़ा किसी भी अपर को क्यों माना!
क्षण-भर अनायास हम याद करें :
तिरती नाव नदी में,
धूल-भरे पथ पर असाढ़ की भभक,
झील में साथ तैरना,
हँसी अकारण खड़े महा वट की छाया में,
वदन घाम से लाल, स्वेद से जमी अलक-लट,
चीड़ों का वन, साथ-साथ दुलकी चलते दो घोड़े,
गीली हवा नदी की, फूले नथुने, भर्रायी सीटी स्टीमर की,
खँडहर, ग्रथित अँगुलियाँ, बाँसे का मधु,
डाकिये के पैरों की चाप,
अधजानी बबूल की धूल मिली-सी गन्ध,
झरा रेशम शिरीष का, कविता के पद,
मसजिद के गुम्बद के पीछे सूर्य डूबता धीरे-धीरे,
झरने के चमकीले पत्थर, मोर-मोरनी, घुँघरू,
सन्थाली झूमुर का लम्बा कसक-भरा आलाप,
रेल का आह की तरह धीरे-धीरे खिंचना, लहरें आँधी-पानी,
नदी किनारे की रेती पर बित्ते-भर की छाँह झाड़ की
अंगुल-अंगुल नाप-नाप कर तोड़े तिनकों का समूह,
लू,
मौन।
याद कर सकें अनायास : और न मानें
हम अतीत के शरणार्थी हैं;
स्मरण हमारा-जीवन के अनुभव का प्रत्यवलोकन-
हमें न हीन बनावे प्रत्यभिमुख होने के पाप-बोध से।

आओ बैठो : क्षण-भर :
यह क्षण हमें मिला है नहीं नगर-सेठों की फैया जी से।
हमें मिला है यह अपने जीवन की निधि से ब्याज सरीखा।

आओ बैठो : क्षण-भर तुम्हें निहारूँ
अपनी जानी एक-एक रेखा पहचानूँ
चेहरे की, आँखों की-अन्तर्मन की
और-हमारी साझे की अनगिन स्मृतियों की :
तुम्हें निहारूँ,
झिझक न हो कि निरखना दबी वासना की विकृति है!
धीरे-धीरे
धुँधले में चेहरे की रेखाएँ मिट जाएँ-
केवल नेत्र जगें : उतनी ही धीरे
हरी घास की पत्ती-पत्ती भी मिट जावे
लिपट झाड़ियों के पैरों में
और झाड़ियाँ भी घुल जावें क्षिति-रेखा के मसृण ध्वान्त में;
केवल बना रहे विस्तार-हमारा बोध
मुक्ति का,
सीमाहीन खुलेपन का ही।
चलो, उठें अब,
अब तक हम थे बन्धु सैर को आये-
(देखे हैं क्या कभी घास पर लोट-पोट होते सतभैये शोर मचाते?)
और रहे बैठे तो लोग कहेंगे
धुँधले में दुबके प्रेमी बैठे हैं।
-वह हम हों भी तो यह हरी घास ही जाने :
(जिस के खुले निमन्त्रण के बल जग ने सदा उसे रौंदा है
और वह नहीं बोली),
नहीं सुनें हम वह नगरी के नागरिकों से
जिन की भाषा में अतिशय चिकनाई है साबुन की
किन्तु नहीं है करुणा।
उठो, चलें, प्रिय!

- अज्ञेय

हरी घास पर क्षण भर' - अज्ञेय की कविता ,' आधुनिकता, एकांत और जीवन की उम्मीद का मन पर एक उम्मीद का--- एक टुकड़ा रच देती हरापन, प्रकृति के साथ होने की अनुभूति, और इन सबके साथ यह मानवीयपन भी कि हम अकेले नहीं हैं, हमारे साथ हमारी प्रकृति है ....उसे पता है कि हां हम हैं । यह अस्तित्व की घोषणा ही जीवन है ...अभिव्यक्ति है और मानवीयपन है । हमारे होने में सब होते ...इस तरह प्रकृति होती कि उसके होने मात्र से पृथ्वी पर किसी की चिंता नहीं रहती । वहीं हमारा पोषण, जीवन और रक्षण भी करती । कविता के साथ जीवन की सहज और सजग अनुभूति का क्रम बना रहे यह प्रकृति के लिए और जीवन के लिए काम्य होता है । अपने आस - पास के परिसर में जीवन का यह हरा टुकड़ा एक तरह से जीने की चाह को निर्मित करता है, समय के बदले रंग में जीवन का अहसास बराबर बना रहे इस बात की अनुभूति ही अपनी साधारणता में हरी घास करा जाती ...धरती पर बिछी घास एक तरह से देखा जायें तो जीवन का प्रतीक है । यहां जो कुछ है वह जीवन का सहज संकेत है ...इसमें हरापन भी है और जीवन की उमंग का लाल ललछौंह रंग जो पहली पत्ती के क्रम में खिलता है । यहां नयापन है और ललछौंह लाल रंग का संसार ही रचता है जीवन और संस्कृति । यहां बैठकर फुर्सत से जीवन संसार पर विचार मग्न लोगबाग मिल जायेंगे । संसार को जानने के लिए संस्कृति से संवाद ही एक तरीका है जहां आप संवेदना के तंतु से एक दूसरे से जुड़ जाते हैं । अज्ञेय की कविता, देखा जाय तो आधुनिकता का अहसास, जीवन को जानने के क्रम में मानवीयपन की साझेदारी और प्रकृति का साथ ....इन सबके साथ संवाद की भूमि ही कविता के क्रम में जीवन और संसार रचती है ...जिस पर हमें गौर करने की जरुरत है । एक अजनबीपन से भरे शहर के पार्क में 'हरी घास पर क्षण भर' बैठे होने में जो ठहराव, जो राग संसार और एक

दूसरे को जानने की जो उत्कंठा है उसमें केवल प्रेमी जोड़े ही नहीं हैं, इनके साथ वह प्रकृति का हिस्सा हरी घास और उस हरी घास के भीतर यह एहसास बना रहना कि हां ये मेरे साथ ही हैं और ये बात हरी घास अपने भीतर दबा कर रखती है । घास में जो मुलायमियत है जो स्वीकार करने का भाव है वहीं अभाव के बीच भी जीवन के लिए बड़ा भाव रचता है। यहां वह कालखंड भी महत्वपूर्ण हो जाता है जिसमें यह सब हो रहा है । कैसे एक क्षण पूरे जीवन को परिभाषित करता है यह कहीं और नहीं अज्ञेय की रचना प्रक्रिया के प्रकाश में जाना जा सकता है । अज्ञेय के यहां, संकेत, क्षण, मानवीय गरिमा और मूल्य संरचना को एक व्यक्तित्व के रूप में देखा गया है । यहां जो कुछ संसार रचनागत रूप में संभव होता है वह यूं ही नहीं हो जाता है उसे मानवीय जीवन की आंच में तपाकर जीवन की भट्ठी से जैसे निकाला गया हों एक तरह से यह भी कह सकते हैं कि उनके यहां भाषा में व्यक्तित्व को उपलब्धि के रूप में कमाया गया है । यह किसी एक कविता या एक कहानी के आधार पर बनी राय नहीं है बल्कि अज्ञेय को पढ़ने के क्रम में बराबर से यह महसूस होता रहा है कि उनके यहां यदि कुछ छूट रहा है तो वह यही है कि साधारण पाठक उनकी भाषिक सृजनशीलता को न समझ पाने का कारण बन सामने आता रहता है । यह भी कहना उचित लगता है कि अज्ञेय को समझने के लिए एक अतिरिक्त सजगता की जरूरत होती है वहीं आधुनिकता के प्रकाश में मानवीय व्यक्तित्व व व्यवहार को रचने की उनकी कोशिश ही जीवन को व्यापक संदर्भ से जोड़ते हुए मनुष्य की सर्जनात्मक सत्ता को प्रकाशित करती है । आज जैसे जैसे मूल प्रकृति हमसे दूर होती गई या यों ही हम सबने मूल प्रकृति से अपने को दूर कर लिया तो प्रेम की सहज सर्जनात्मकता भी दूर होती गई । शहरीपन के रास्ते प्रकृति के भीतर होने की क्षणिक अनुभूति के साथ हरी घास अपने होने का अहसास खोजती है । आज पार्क और सार्वजनिक जगहें जो शहर और प्रकृति के हृदय स्थल कहे जा सकते कम होते जा रहे हैं , ऐसे में 'हरी घास पर क्षण' भर का अहसास भी कम होता जा रहा है पर यह हरी घास जीवन के लिए , सुकून के लिए जरूरी है । शहरीकरण के बीच हरितिमा की इबारत का होना भी हवा , पानी , धरती और आकाश की तरह जरूरी है । आज वह हरापन भी कितना बना और बचा है इसे कंक्रीट के उगते जंगल आँखों के आगे उपस्थित कर ही रहे हैं । जहाँ भी हरापन थोड़ा सा बचा है , बना है उसे बचाने के लिए प्रार्थना की जरूरत है । हरापन जो आँखों को सुकून पहुँचाता है वह घर के आस - पास बना रहे तो जीने के प्रति चाह का मार्ग भी प्रशस्त होता है । यह हरितिमा और मिट्टी जीने की संभावना ही हमारे बीच उगाती है , घर की छोटी सी बगिया जहाँ चम्पा , गुलाब , कनेर ,लिली , गुलदाउदी , चाँदनी , गुड़हल , और लताए जहाँ हर क्षण अपने होने और नयेपन का अहसास कराती हैं , वहीं जीवन और प्रकृति को समझने का अवसर भी प्रदान करती हैं । छोटे - छोटे पौधों की झुरमुट में गौरय्या , नीले पंख वाली छोटी सी चिड़िया , बुलबुल , भौरे , तितली सब आते हैं और सबके लिए यहां कुछ न कुछ होता ...ताजगी से भरे और खिले फूलों के बीच तितली का होना ...एक जीवन अभिव्यक्ति है जीवन की रंग की और पंख की । 'हरी घास पर क्षण भर' जीवन को , रचनात्मकता को और मानवीय भाव को लेकर हमारे बीच आता है। हरी घास पर क्षण भर'होते हुए हम सब जीवन की इबारत को ही लिखते हैं। हमारे होने के जो अस्तित्व है , जो जीवन संदर्भ है , जो बात है वह सब यहां और इस क्षण में अपने होने की उपस्थिति को अनुभव करना ही संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है ।

इनके बीच होते हुए लगातार एक नयापन का , रंग के बदलते जाने का अहसास होता है । एक पत्ती जो शुरु में ललछौंह रंग लिए होती वही धीरे - धीरे धानीपन से हरापन लिए आ जाती है । समय के बीतते जाने का अहसास कराती है । वहीं अपने होने और धीरे - धीरे अपनी जगह छोड़ कर नयेपन के लिए नये के लिए अपनी

जगहे भी छोड़ जाती हैं । इस तरह पेड़ पौधों के साथ आप जीवन संसार के क्रम को ही समझने का उद्योग करते है । यह प्रकृति हमारे लिए हवा पानी का जहां स्रोत है वहीं प्राणवायु के साथ शुद्धता और मागंल्य का परिवेश भी बनाने का काम करती है । इनके बीच होना ही जीवन का सबसे बड़ा संकेत है । शहर में होते हुए भी मिट्टी का , कहे माटी का अहसास आदमी लिए रहे , अपने साथ अपने पुरुखे की छवि लिए रहे तो जीवन की संभावना में आधुनिकता , तकनीक और मशीन सबके साथ सुंदर संयोजन करते हुए भी चला जा सकता है । फूल पत्तियां और हरापन अस्तित्व की चमक लिए सामने आते हैं । यह अस्तित्व ही जीवन के मूल में है , इसी के साथ अपने होने की अभिव्यक्ति इनके बीच बने रहने में होती है । जीवन की अभिव्यक्ति हो तो सही मायने में हम सब जिन्दगी को जीते हैं और उसे अपने भीतर महसूस करते हैं । प्रकृति के बीच होने से उपस्थिति का अहसास बना रहता ? इस बात की चिंता भी वहीं करेंगे जो पंचतत्व को जीवन का श्रेय और प्रेय समझते हैं । जिन्हें मिट्टी की सुगंध का अहसास ही नहीं उनके बारे में तो क्या कहा जाये । ये आलसी लोग कुछ इस तरह के होते कि दीवार पर रंग रोगन कराने की जगह पत्थर टाइल्स लगा लें । हरेपन की जगह ये हरी घास की चटाई लगा कर अपने आधुनिक होने और हर तरह से झंझट मुक्त होकर जीवन बस जी रहे हैं । कहते हुए लोग मिल जाते की हमें तो किसी तरह का झंझट नहीं पालना ...कौन देखभाल करें ...एक अनावश्यक बोझ है इसलिए सब पक्का करा लिया ...घर के आस - पास मिट्टी नहीं तो कहां से माटी का अहसास होगा , कहां से फूटेगी संवेदना की कोपल ? फिर जब पृथ्वी तपती है गर्मी के दिनों में तो यहीं सबसे ज्यादा पेड़ पौधों को लगाये जाने की बात करते मिल जायेंगे ....पर बात करने भर से कुछ नहीं होता ...जब तक आप आगे बढ़कर अपने हिस्से की हरित पट्टी नहीं लगाते या हरितिमा के लिए जगह नहीं छोड़ते तब तक कुछ भी नहीं हो सकता । इस बात का उदाहरण इससे भी मिलता है कि पेड़ पौधे की चाह में प्लास्टिक के गमले में प्लास्टिक के फूल पत्ती सजावटी तौर पर रख लेते हैं यह केवल देखने दिखाने तक ही होता पर इसमें जीवन का वह स्पंदन कहां जो हरी घास फूल पत्ती और हरितिमा में हैं । शहरीकरण, अजनबी पन के बीच राग का संसार हरी घास पर क्षण भर कविता में बहुत गहराई के साथ पढ़ा जा सकता है । यहां घांस को मानवीय भाव के साथ, राग और प्रेम के संसार में व्यक्तित्व की खोज ही अज्ञेय की रचनाधर्मिता के मूल में है । अज्ञेय को पढ़ने का अर्थ है सर्जनात्मकता के बीच मनुष्य को समझने का अर्थ पाना है । शहरीकरण के बीच थोड़ा मिट्टीपन , थोड़ा कच्चापन और थोड़ा सा हरापन बना रहे तो जीवन को सुकून मिल जाता ।आखिर हमारे सारे कर्म उद्योग जीवन को अच्छे से जीने के लिए ही है । कर्म की मिट्टी ही हमारा निर्माण करती है । इस समय हरीतिमा की चिंता करना उसके बीच होना और इस उपस्थिति के अहसास को बनाये रखना ही जीवन का पर्याय है । जीवन स्रोत के नाभिक को हरी घास पर क्षण भर कविता में जीया गया है और मानवीय व्यवहार व व्यक्तित्व को रचने की एक बड़ी चुनौती के रूप में इस कविता को पढ़ा जाना चाहिए।

अज्ञेय की जीवंतता और सजगता का दस्तावेज़ : भवंती, अन्तर और शाश्वती

डॉ. दिलीप शर्मा,
प्राक्तन उप प्राचार्य, नगाँव कालेज
नगाँव : असम

अज्ञेय मूलतः एक लेखक हैं, दार्शनिक नहीं, समस्याएं चाहें एक सी हों कवि के चिंतन के औजार, सोचने का ढंग, विचारों को छूने की प्रक्रिया कुछ अलग होती है किन्तु : यह बात भी सही नहीं है कि एक लेखक दार्शनिक नहीं हो सकता किन्तु उसका दर्शन, हमें उसकी दार्शनिक स्थापनाओं में खोजना नहीं चाहिए ।

कारण लेखक का दर्शन "सोच के विषयों में नहीं, बल्कि स्वयं सोच की प्रक्रिया और उसके व्यवहार में निहित होता है।" दुसरे लेखक का सृजन-संघर्ष विचारों से नहीं शब्द और भाषा से जुड़ा रहता है, उदाहरणस्वरुप हम इस वाक्य का सहारा ले सकते हैं कि एक बार चित्रकार "देगा" ने कवि "मलार्मे" से कहा, "अजीब है तुम लेखकों का धंधा । मेरे पास इतने ढेर से विचार हैं, लेकिन मैं लिख नहीं सकता ।" तब मलार्मे ने जवाब दिया, "प्यारे देगा, कविता विचारों से नहीं शब्द से बनती है" ।

हाँ कविता के इस सत्य के प्रति अज्ञेय हमेशा सजग और सचेत रहे, इसलिए उन्होंने कविता की भाषा, अलंकार, रूप- विचार तत्व और प्रतीक चिह्न आदि को परिवर्तन के लिए आह्वान करके कलगी बाजरे की नमक कविता में स्पष्ट लिखा था –

" नहीं कारण की मेरा ह्रदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है ।
बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गये हैं ।"

अज्ञेय पश्चिमी भावबोध के प्रति मोहित होते हुए भी अपनी जातीय परम्परा और भाषा के प्रति गहन स्तर पर संवेदनशील रहे । अज्ञेय ने नेहरु युग की भव्य उदारता, घोर आश्चर्यजनक अमौलिकता, एक असंतुष्ट, संदिग्ध किस्म का संतुलन- संवेदनशील, किन्तु सीमित हार्मनी के आदेश से मुग्ध – इसलिए हिन्दुस्तानी अनुभव के उन सब विकारों, विसंगतियों, विडम्बनाओं से विमुख –जो उनके सामंजस्य, सौन्दर्यबोध को भंग करता हो; आत्मलिप्त और बाहरी उदारता के बावजूद भीतर से कहीं बहुत भीरु, संकीर्ण, उदासीन ; अतः अज्ञेय के कर्म और चिन्तन में नेहरु-युग का उदात्त सौन्दर्य और जड़गत सीमाएं दोनों में देखी जा सकती हैं ।

अतः अज्ञेय के इन तीनों ग्रन्थों में (भवंती, अंतरा, शाश्वती) विगत जीवन के चिंतन-संसार

इन पुस्तकों में फैला हुआ चिंतन प्रदेश मिलता है, यात्रा का उतार-चढ़ाव नहीं, मिल के पत्थर नहीं जिन पर कुछ क्षण बैठ कर हम लेखक के पाँव चिह्न आंक सकें, कहाँ वह ठिठका था, कौन सी राह चुनी थी, किस पगडण्डी पर कुछ दूर चलकर वापस मुड गया था, यह भी पता नहीं चलता, तथा किस ठोकर आह और दर्द इन पन्नों पर अंकित है ।

उद्देश्य यही है कि उनके पाठक उस पुरे परिदृश्य, उस सागर पथ का एक बार अवलोकन कर के उसे पहचान लें जिससे कवि स्वयं गुजरता आया है ।

अपने दूसरे संकलन "अंतरा" के निवेदन में अज्ञेय लिखते : "इन दो संचयनी में इस बात का काफी संकेत मिल जायेगा कि पिछले दस-बारह वर्षों में कौन से, कैसे साहित्यिक या साहित्य संपृक्त प्रश्न मुझे उन्मथित करते रहे हैं अथवा चुनौती देते रहे हैं । केवल समकालीन घटना पटल को देखने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसका अपना जीवन और कर्म उन –प्रश्नों के साथ बंधा है । इसका भी कुछ संकेत पाठक को मिला होगा कि उन प्रश्नों से जूझता हुआ मैं किधर जा रहा हूँ, उस संघर्ष में कौन से प्रमाण मेरे संबल हैं । कौन सी युक्तियाँ मेरे साधन, कौन से लक्ष्य मेरी प्रेरणा ।"

अतः इस व्यक्तव्य से स्पष्ट है कि भवंती, अंतरा और शाश्वती अन्तःप्रक्रियाएं हैं जो हिंदी गद्य में सर्वथा नवीन विधा की रचना है । "ये न तो जीवनी है, न तो आत्मकथा, न यात्रावृत्त, न संस्मरण, न रेखाचित्र, न रिपोर्ताज । यह तो डायरी के निकट है किन्तु सम्पूर्ण रूप से डायरी भी नहीं कहा जा सकता । अतः इसे स्वतंत्र रूप से अन्तःप्रक्रिया ही कहना सर्वथा सार्थक प्रतीत होगा ।

अज्ञेय की दृष्टि में इन पुस्तकों में व्यक्त- विचारों में लीरिक तत्व और वैचारिकता के साथ-साथ रचयिता का व्यक्तित्विभव्यन्जना निबन्ध के तत्वों से जुड़ा प्रतीत होता है । इन अन्तःप्रक्रियाओं का सम्बन्ध अज्ञेय की रचना यात्रा से सीधे जुड़ा हुआ है, इस प्रसंग में अज्ञेय लिखते हैं – जिन छोटे-छोटे प्रकरणों को जोड़ कर ये पुस्तक बनी है, वे प्रायः सभी छोटे-छोटे युद्धों के इतिहास हैं, प्रत्येक के पीछे एक यन्त्रणा भरी प्रक्रिया रही है इतना ही है कि समूची पुस्तक में एक ही रचना की प्रक्रिया में पायी हुई यंत्रणा से मिलने वाली संहति नहीं है, वह फुटकर प्रक्रियाओं का फलन है, जिसके पीछे उतनी ही फुटकर, विविध और वैचित्रमयी यंत्रणा रही है । संहति उसमें है तो रचना के माध्यम से नहीं रचयिता के जीवनानुभव के माध्यम से ।"

वस्तुतः अज्ञेय एक चिंतक हैं –अतः वे अपनी रचना यात्रा में जीवन, समाज, साहित्य, भाषा, आदि के बारे में सतत चिन्तन से हिंदी के भंडार की श्रीवृद्धि की है । ईश्वर, काल, धर्म, नैतिकता, यथार्थ, छंद आदि अनेक विषयों के सम्बन्ध में उनका गंभीर चिंतन इन अन्तःप्रक्रियाओं में संकलित है ।

इसके बाद भवंती के निवेदन में अज्ञेय ने उल्लेख किया – "अंतिम कुछ नहीं है, सहयात्री, सिवा इस मांग के कुछ मूल्य हो, जिनकी ओर बढ़ने जाया जा सके और सिवा उधर के यात्रा के आनंद के ।" इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए आप पुनः भवंती की एक प्रक्रिया में लिखते हैं –

" अगर मेरे लिए मृत्यु नहीं तो फिर जीवन भी मेरे लिए नहीं है । मैं आज जीता हूँ यह उतनी ही संयोगिक बात है जितनी यह कि कल मैं मर जाऊंगा । मुझे दोनों ही चिंता छोड़ के कुछ और से उलझना चाहिए, किसी दूसरी चीज़ को अपना लक्ष्य, साध्य और शोध बनाना चाहिए । वह "और" क्या हो सकता है ? मूल्य ! लेकिन कौन सा मूल्य ? लोग कहते हैं जीवन मूल्य ।

किन्तु इस संदर्भ में अज्ञेय की टिपण्णी यहाँ द्रष्टव्य है –" भोगने वाला व्यक्ति और मनीषा के अलगाव की पुरानी चर्चा में जब कहा गया था

कि दोनों के बीच एक दूरी है और जितना बड़ा कलाकार होगा उतनी अधिक दूरी होगी ।

अज्ञेय हमेशा अपनी लेखन में परम्परा और भारतीय दृष्टि को पहचानने और स्वीकार करने पर जोर देते हैं । सब कुछ देखने और परिवर्तन के बाद यह कहना उचित जान पड़ता है कि इन अन्तःप्रक्रियाओं में साहित्य में साहित्य और जीवन के बुनियादी प्रश्नों पर अज्ञेय का मौलिक चिंतन व्यक्त हुआ है । हिंदी में बिना सोचे-समझे शब्दों का प्रयोग हो रहा है । अज्ञेय ने आज के साहित्य में बार-बार प्रयुक्त होने वाले ऐसे कई शब्दों को अर्थहीन और ऊर्जागुणशून्य मानकर इनके स्थान पर नये शब्दों के चयन को स्वीकारा है । इसके बाद “शाश्वती” में यथार्थ के सम्बन्ध में अज्ञेय अपना विचार व्यक्त किया है, जिनमे विचारों में “विशदता और मौलिकता” दोनों को देखा जाता है ।

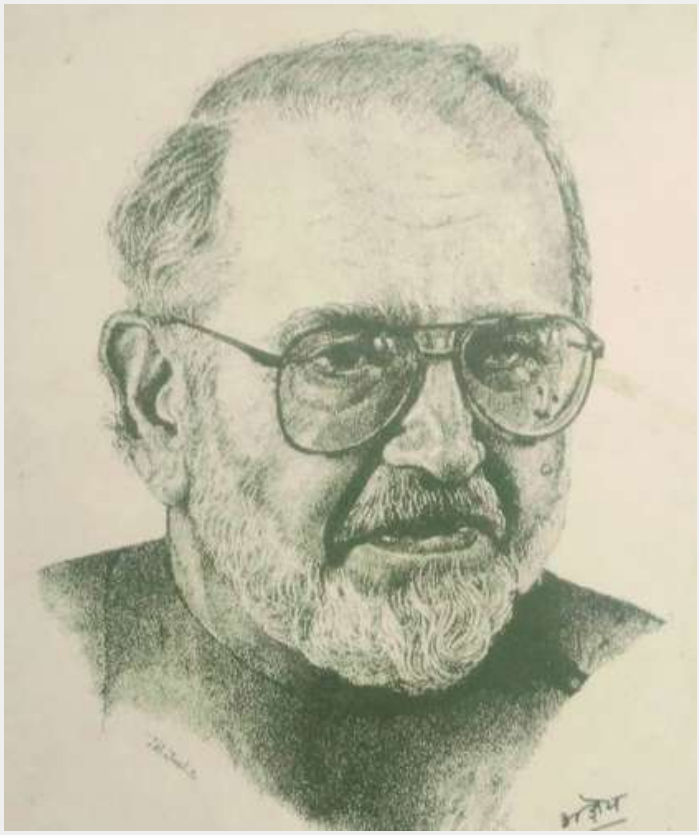

भाषा वैशिष्ट्य और अज्ञेय

प्रियंवदा पाण्डेय
देवरिया उत्तर प्रदेश

युग प्रवर्तक अज्ञेय को भला कौन नहीं जानता है। अपनी लेखनी से उन्होंने नवीन प्रतिमान तो स्थापित किए ही साथ ही एक नई शैली और नई विचारधारा को भी जन्म दिया जिसे साहित्यजगत में प्रयोगवाद के नाम से जाना जाता है। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने जो कीर्तिमान स्थापित किया उससे सभी परिचित हैं। इसलिये मैं सिर्फ उनके भाषा वैशिष्ट्य पर बात करूँगी ।

अज्ञेय को लोग गद्य का प्रेत भी कहते हैं । मेरा मानना है कि सरल शब्दों में चमत्कार उत्पन्न किया जा सकता है सरल शब्दों में गंभीर बातें नहीं कहीं जा सकती हैं। यह एक लेखक ही जान सकता है कि उसे अपने बातों को किस भाषा में बरतना है दूसरी बात लेखक के लिए उसके भाषा की समृद्धि मील का पत्थर साबित होती है ।

जिसका शब्द भंडार जितना ही समृद्ध और परिष्कृत होगा वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति उतना ही सशक्त रूप में कर सकेगा। भाषा का व्यवहार कैसे करना है कि संप्रेषण शत प्रतिशत हो अज्ञेय इससे भलीभाँति परिचित थे। वह यथासंभव यथास्थान भाषा को सरल और कठिन रूप में प्रयोग कर लेते थे। असाध्य वीणा का एक अंश :-

"कृतकृत्य हुआ मैं तात ! पधारे आप ।
भरोसा है अब मुझको
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी।"

कितना सहज प्रवाह है यहाँ पर भाषा का तो वहीं इसी कविता में जब आप लिखते हैं-

सब उदग्र पर्युत्सुक
जन-मात्र प्रतीक्षमाण!

भाषा का यह विलक्षण सौष्ठव अपूर्व है। क्योंकि किसी राजपुरुष की भाषा आमजन की भाषा से क्लिष्ट यों कहें संस्कृतनिष्ठ होनी ही चाहिए। कविता जैसे कवि को चुनती है वैसे ही वह शैली, प्रवाह और शब्द का भी वरण करती है, मैं मानती हूँ कि उसने अज्ञेय को उनकी भाषिक समृद्धि के कारण स्वयं चुना था। एक अन्य कविता में जब आप लिखते हैं-

और नयन शायद अधमीचे
और उषा की धुँधली-सी अरूणाली थी
सारा जग सींचे।

यह अज्ञेय ही लिख सकते हैं और कोई नहीं, कठिनतर शब्दों की तुक आसान कहाँ ? भाषा के नवीनतम प्रयोग ने अज्ञेय की लेखनी को जो कसाव दिया है उसको नकारा नहीं जा सकता।

यदि वह भाषायी प्रयोग में इतनी सतर्क न होते तो उनका काव्य अथवा गद्य अपनी अलग और अपूर्व पहचान बनाने में सफल नहीं होता। अज्ञेय के पूर्ववर्ती रचनाकारों ने जहाँ काव्य भाषा में लाक्षणिकता और प्रतीक विधान पर बल दिया था वहीं अज्ञेय ने भाषा को यथार्थ से जोड़ने का सार्थक प्रयास किया।

मेरा मानना है कि भाषा की विशिष्टता लेखन को एक विशिष्ट आयाम तो देती ही है लेखक को विशिष्ट स्थान पर स्थापित स्थापित भी करती है। कहने में अत्युक्ति नहीं है कि अज्ञेय का जो स्थान आज तक है उसमें उनकी भाषा का अहम योगदान है वह जहाँ क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं वहीं पर आवश्यकतानुसार प्रांजल और ठेठ शब्दों के प्रयोग में भी चूकते नहीं हैं। एक कविता का छोटा सा अंश देखिये। कि--

यह जो मिट्टी फोड़ता है
मड़िया में रहता है और महलों को बनाता है।
मैं उसकी आस्था हूँ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अज्ञेय के शब्द प्रयोग के लिए लालायित रहते थे भाषा की जो जादूगरी उनके काव्य अथवा गद्य में दिखती है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

डॉ. नितिन सेठी, बरेली

अज्ञेय का काव्यभाषा सम्बन्धी चिन्तन

अज्ञेय भावुक कवि होने के साथ-साथ एक गहन चिंतक और विचारक के रूप में भी हमारे समक्ष आते हैं। अज्ञेय ने समय-समय पर सामान्य भाषा और काव्यभाषा; इन दोनों पक्षों से सम्बंधित अपना तलस्पर्शी चिंतन अपने विभिन्न निबंधों, व्याख्यानों, भूमिकाओं के साथ-साथ अपनी कुछ कविताओं में अभिव्यक्त किया है। सामान्य भाषा और काव्यभाषा के सम्बंध में उनके जो विचार हैं, वे भाषा के बारे में सोचने-समझने का नवीन मार्ग प्रशस्त करते हैं और अज्ञेय के भाषा चिंतन को हमारे समक्ष लाते हैं।

हम जानते हैं कि भाषा मानवीय आविष्कार है। जितना अर्थ भरने का हम प्रयत्न करते हैं, उतना ही वह अर्थ होता है। एक समय में जो अर्थ मान लिया गया, प्रतिष्ठित हो गया। दूसरा मान लेते, दूसरा अर्थ हो जाता। इसलिए शब्द में अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है। इसी बात को ध्यान में रखकर अज्ञेय आधुनिक समय में भाषा की समस्या को देखते हैं,"आधुनिक जीवन में कवि एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है। भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया व्यापक अर्थ भरना चाहते हैं और अहंकार के कारण नहीं, इसमें युग की गहरी व भीतरी मांग स्पन्दित है।" ये पंक्तियाँ यह बात प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त लगती हैं कि अज्ञेय ने न केवल 'भाषा में' लिखा है अपितु 'भाषा पर' भी लिखा है। अज्ञेय के अनेक निबंध संग्रहों, लेखों और यहाँ तक कि काव्यकृतियों की भूमिकाओं में भी भाषा विषयक अनेक विचार दिखाई देते हैं। ये विचार अज्ञेय का न केवल भाषा विषयक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं अपितु विभिन्न समस्याओं का निराकरण करते हुए भी दिखाई देते हैं। 'आत्मनेपद', 'भवन्ती', 'अंतरा', 'जोग लिखी', 'लिखी कागद कोरे' आदि निबन्ध संग्रहों में अनेक स्थानों पर अज्ञेय भाषा सम्बंधी दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं। भाषा की समस्या को अज्ञेय कवि कर्म की मुख्य समस्या मानते हैं। अज्ञेय ने जब अपना काव्य सृजन आरंभ किया था, छायावादी काव्य अपने अंतिम चरण में था। उनकी दृष्टि में छायावादी काल की काव्यभाषा अपने कलेवर में पुरानी पड़ चुकी थी और आधुनिक जीवन से सामंजस्य नहीं बिठा पा रही थी। "अगर वह यह कहते हैं कि उसमें युग की गहरी मांग स्पंदित है तो यह सोचना पड़ता है कि उस युग की भाषा अर्थात् छायावादी भाषा आधुनिक जीवन की जटिलता को व्यक्त नहीं कर पा रही थी जिसके कारण वे भाषा में नया अर्थ भरना चाहते थे और इस बात में अत्यधिक सफल भी हुए लगते हैं।"अज्ञेय ने भाषा के सम्बंध में ऐतिहासिक दृष्टि से भी विचार किया है। द्विवेदी युग और छायावादी युग की काव्यभाषा पर उनका चिंतन महत्त्वपूर्ण है।वे कहते हैं,"द्विवेदी युग में भाषा के बारे में जो सजगता व आग्रहशीलता थी, वह आज नहीं है। यह ठीक है कि उस युग में जो आग्रह था वह आज की स्थिति में पर्याप्त न होता, क्योंकि उस समय व्याकरण शुद्धि और भाषा के प्रतिमानीकरण पर ही अधिक बल दिया जाता था और भाषा अथवा शब्द का संस्कार व्याकरण शुद्धि से अधिक बड़ी व गहरी बात है।

"छायावादी युग का चिंतन करते हुए अज्ञेय लिखते हैं,"छायावादी युग के कुछ कवियों को छोड़कर, भाषा के सम्बंध में जितनी चेतना कवि या साहित्यकार में होनी चाहिए, उतनी कम लेखकों में रही। मैं समझता हूँ कि हिन्दी की यह बहुत बड़ी कमी या समस्या रही।"

अज्ञेय को नवीन भाषा प्रयोगों की आवश्यकता इसलिए महसूस होती है क्योंकि उनका कवि महसूस करता है कि भाषा का व्यापकत्व अब उसमें नहीं है। आधुनिक युग में संवेदना का विकास हो रहा है, उसका परिवेश लगातार विस्तृत होता जा रहा है। अज्ञेय ने कवि कर्म की इस समस्या पर विचार करते हुए लिखा है,"यह आज के कवि की सबसे बड़ी समस्या है।यों समस्याएँ अनेक हैं- काव्य विषय की, सामाजिक उत्तरदायित्व की, संवेदना के पुन: संस्कार की; किंतु इन सबका स्थान पीछे है क्योंकि यह कवि कर्म की ही मौलिक समस्या है,साधारणीकरण व सम्प्रेषण की समस्या है और कवि को प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करने वाली सबसे बड़ी शक्ति यही है। कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व अब उसमें नहीं है। शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उनमें भरना चाहते हैं पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं। वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है।"

अज्ञेय की दृष्टि में भाषा केवल छपने वाले साहित्य से ही सम्बंधित नहीं होती अपितु भाषा एक सांस्कृतिक चेतना होती है और इसी क्रम में वह सांस्कृतिक चेतना का जागरण भी करती है। इसके लिए सर्जनात्मकता पहली शर्त है। अज्ञेय ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है,"भाषा को सिर्फ आज छप रहे या चलते साहित्य से जोड़कर देखने से कुछ लाभ नहीं होगा। भाषा का सार्थक विचार करने के लिए समूची संस्कृति के साथ उसके समग्र व्यक्तित्व व सम्बंध का विचार करना होगा। यदि सभ्यता भौतिकवादी, उपयोगितावादी, उपभोगवादी, शोषणमूलक है तो भाषा भी वैसी ही होगी। भाषा में जान डालने के लिए संस्कृति में जान होनी चाहिए। सर्जनात्मक भाषा मुर्दा या मरणशील समाज की नहीं होगी। सर्जनात्मक समाज से ही सर्जनात्मक भाषा मिलेगी। भाषा केवल समाज का, जीवन का, उसकी मूल्यदृष्टि का मुकुर और प्रतिबिम्ब होती है, उसका कारण नहीं।" अज्ञेय ने लिखा भी है-

बड़े काम की चीज़ है भाषा:
उसके सहारे एक से दूसरे तक
जानकारी पहुँचाई जा सकती है
वह सामाजिक उपकरण है

अपने निबंध 'भाषा और अस्मिता' में अज्ञेय ने भाषाविषयक अनेक तथ्यों पर नवीन दृष्टि से लेखन किया है। वे लिखते हैं,"हम जो भाषा बोलते हैं उसके द्वारा हम वह संसार चुन लेते हैं जिसमें हम रहते हैं। या इसी बात को उलटकर कहें तो हम जो भाषा बोलते हैं उसी के निमित्त से हम उस जीवन व्यवस्था (ऋत्) के द्वारा चुने जाते हैं जिसके हम अंग हैं। एक निर्दिष्ट स्थान और धर्म पा लेते हैं, उसे निबाहने से स्वतंत्र हो जाते हैं।" इसी आधार पर जब हम अज्ञेय की कविता को जाँचते-परखते हैं तो हम पाते हैं कि अज्ञेय की कविताओं में भाषा के अनेक सृजनात्मक प्रयोग मिलते हैं और क्योंकि अज्ञेय की दृष्टि में भाषा एक सामाजिक समस्या है, अतः भाषा के विभिन्न सृजनात्मक प्रयोगों के द्वारा अज्ञेय अपने सामाजिक दायित्व को भी निभाते हैं।अज्ञेय आगे भी लिखते हैं,"भाषा का उपयोग जितना ही व्यापक और गहरा होता है, उतनी ही भाषा समृद्धतर होती है और अपने व्यवहर्त्ता को समृद्धतर बनाती है और भाषा का ऐसा प्रयोग काम-चलाऊ, आनुषांगिक, आपद्धर्मी नहीं है, वैसा प्रयोग नहीं है जो शासक के या लोक-संपर्क कर्मचारियों के या व्यवसायियों के या पंडितों के द्वारा भी किया जा सकता है। ऐसी ही भाषा, ऐसी ही प्रयुक्त भाषा-अनुभव की भाषा-संस्कृति का और अस्मिता का उपकरण होती है।"

अज्ञेय के भाषाविषयक चिंतन को डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे साहित्यकारों ने भी सराहा है। वे लिखते हैं,"छायावाद का प्रभावक्षेत्र भी कविता था। छायावादी काव्यभाषा को तोड़ा जाना इस दृष्टि से सबसे अधिक आवश्यक था किसी भी नये भाव-संचरण के लिए। अज्ञेय ने इस स्थिति को समझा और भाषा को नया संस्कार दिया।

ऐसा संस्कार जो बोलचाल की भाषा का था पर इस मौलिक भाषा को जन-जन की भाषा कहकर ही वे संतुष्ट नहीं रहे वरन् उसके माध्यम से उन्होंने समूची काव्यसंवेदना का परिष्कार किया।"

अज्ञेय भाषा के निर्माण में शब्दों की भूमिका व सार्थकता को नकारते नहीं परन्तु फिर भी वे कुछ बातों को शब्दों से भी परे मानते हैं–

शब्द, यह सही है, सब व्यर्थ है
पर इसीलिए कि
शब्दातीत कुछ अर्थ हैं

अज्ञेय आगे भी कहते हैं,"लेखक के नाते हमारा ध्यान भाषा के रचनात्मक अथवा साहित्यिक उपयोग और अस्मिता पर उसके प्रभाव की ओर अधिक होगा। भाषा की मुद्रा पर आज कई दिशाओं से दबाव पड़ रहा है। मुद्रास्फीति का संकट हर भाषा पर है।"अज्ञेय की कवि दृष्टि में भाषा कवि की परम्पराओं को तोड़ने की शक्ति भी प्रदान किया करती है। कवि रूढ़ियों से आबद्ध होकर भाषा की शक्ति को नहीं पहचान पाएगा। उसे रूढ़ियों को मिटाना ही होगा–

आ, तू, आ,
हाँ आ,
मेरे पैरों की छाप-पर
रखता पैर,
मिटाता उसे

अज्ञेय भाषा की वर्तमान स्थिति पर चिंतित होते हुए कहते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में कोई भी लेखक अपने को 'खुदाई फौज़दार' की भूमिका में देखने का प्रयत्न नहीं करेगा। लेखक भाषा का उद्धारक है या हो, यह कल्पना भी उसे अप्रीतिकर लगेगी। लेकिन इस सत्य से कोई निस्तार नहीं है कि आज के संसार में मानव-मन का घर्षण भाषा के घर्षण से आरम्भ होता है और आज भाषा मात्र सारे संसार में अवज्ञा का शिकार हो रही है। अज्ञेय की दृष्टि में भाषा हमेशा से साधारण प्रयोजनों और कर्म-व्यापारों का माध्यम बनी रही है। अपने ग्रंथ 'त्रिशंकु' में अज्ञेय ने भाषा सम्बंधी परम्पराओं, मान्यताओं, विचारों का युगीन विश्लेषण किया है।'तार सप्तक' की भूमिकाओं में अज्ञेय आन्दोलन के प्रवर्तक के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं।

इनकी भूमिकाओं में अज्ञेय ने अपने समय की काव्य विशेषताओं का सुंदर वर्णन किया है। आज के साहित्य में उन्होंने जो स्थापनाएँ की हैं, वे परम्परागत धारणाओं से इतनी अधिक भिन्न और वैयक्तिक हैं कि हिंदी जगत में उसका सर्वत्र विरोध हुआ है। अज्ञेय के कई विचारों से कुछ विद्वानों का मतभेद व विरोध छिपा नहीं है। अज्ञेय अपने प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह 'आत्मपरक' में समकालीन कविता के विषय में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखते हैं,"सन् साठ के बाद की कविताओं में मुझे वह बहुत कम मिलता है जिसकी मैं काव्य से अपेक्षा रखता हूँ। भाषा के नये गुण मिल जाएंगे, कुछ नये बिम्ब मिल जाएंगे, लेकिन इतना काफी नहीं होता। अच्छे काव्य में सच्चाई की नयी पहचान होती है। इस अर्थ में अच्छा काव्य संसार को बदलता है,भले ही थोड़ा-थोड़ा करके और इस गुण का मैं समकालीन कविता में अभाव पाता हूँ।"प्रतिबद्ध कविता के संदर्भ में वह कविता की ईमानदारी पर जोर देते हैं। वे कहते हैं,"मैं तो यह देखूँगा कि रचना की दृष्टि कितनी सच्ची है और दूसरे शब्दों में यह देखूँगा कि उस प्रतिबद्धता की खूँटी कहाँ है।"

अज्ञेय का स्पष्ट रूप से मानना रहा कि कोई भी समाज परायी भाषा में नहीं जी सकता। विशेषकर वह समाज जो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा हो, उसे तो अनिवार्य रूप से अपनी ही भाषा की आवश्यकता होती है।वह भाषा जो उस समाज की अस्मिता को एक स्पष्ट स्वरूप प्रदान कर सके। अज्ञेय इसीलिए भाषा को आत्म साक्षात्कार के माध्यम के साथ-साथ आत्म सृष्टि के माध्यम के रूप में भी देखना चाहते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में अस्मिता का आविष्कार यहीं से होता है। इसीलिए वह मानवीय संस्कृति की सबसे मूल्यवान उपलब्धि भाषा को मानते हैं और बार-बार कहते हैं कि मानवीय अस्मिता का आविष्कार और सृष्टि, दोनों ही भाषा के आविष्कार में अंतर्निहित होते हैं। वास्तव में अज्ञेय ने काव्यभाषा के सम्बंध में जितने विचार व्यक्त किए हैं, उससे कहीं अधिक इन विचारों को अपनी काव्यरचनाओं में प्रस्तुत भी किया है। प्रयोग के साथ इन विचारों को अपनाने के कारण अज्ञेय के ये विचार आज भी पूर्ण रूप से प्रासंगिक हैं।

तारसप्तक में प्रयोगवाद की अवधारणा

डॉ धनञ्जय शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, सर्वोदय पी.जी.कॉलेज
घोसी, मऊ

अज्ञेय द्वारा संपादित सन 1943 में तार सप्तक आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में एक मील का पत्थर है। परवर्ती छायावादी कविता और नयी कविता के संक्रमण काल में अज्ञेय द्वारा सप्तक काव्य की श्रृंखला का आयोजन,आज से अस्सी वर्ष पूर्व कवि और कविता के युगीन परिवेश को व्यक्त करती है।यह कहना असंगत न होगा कि समकालीन काव्य के इतिहास में तार सप्तक ने जो स्थान पाया, जिस अर्थ और भाव में उसका प्रभाव परवर्ती काव्य विकास में व्याप्त है, यहां उसके व्यक्त -अव्यक्त इतिहास को प्रस्तुत प्रकाशन रेखांकित करना है।

तारसप्तक

अज्ञेय लिखते हैं-तारसप्तक में सात युवा कवियों की रचनाएं हैं, ये रचनाएं कैसे एक जगह संग्रहित हुईं इसका इतिहास है।"यह इतिहास जान लेना आवश्यक है-तारसप्तक के संपादन से दो वर्ष पूर्व दिल्ली में अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन का आयोजन हुआ जहां कुछ साहित्यकारों ने विचार किया कि छोटे-छोटे फुटकर संग्रह छापने के बजाय एक संयुक्त संग्रह छापा जाय,ऐसाज इसलिए किया गया कि छोटे फुटकर संग्रह अस्तित्व विहिन होते हैं, सागर में एक बूंद की भांति को जाते हैं। अतःसंयुक्त प्रयास द्वारा संयुक्तांक निकाला गया जिसका प्रथम मूलाधार आपसी सहयोग एवं चंदा के माध्यम से पेपर और छपाई का खर्च निकाला गया। इसका दूसरा मूल सिद्धांत यह था कि-"संग्रहित सभी कवि ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं,जो दावा यह नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है,केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।" इस प्रकार कविता को प्रयोग का विषय और अन्वेषी दृष्टिकोण तार सप्तक का आधार बना।आधुनिक संदर्भ में अपने कथ्य पाठकों तक अक्षुण्य पहुंचाने के लिए शिल्पगत नये प्रयोगों पर जितना बल दिया गया उतना पहले कभी नहीं दिया गया था।संकलित सभी कवियों के एकत्र होने का कारण भी उनके प्रयोग समानधर्मिता बतायी गयी।

तार सप्तक का प्रकाशन सन 1943 में हुआ जिनमे गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरीजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय की रचनाएं शामिल की गयीं। इस संदर्भ में अज्ञेय का कथन है-"तार सप्तक में सात कवि संग्रहित हैं, सातों एक-दूसरे के परिचित हैं।

उनके एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नही है, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं- राही नहीं राहों केअन्वेषी, उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है। उनमें मतैक्य नहीं है, जीवन के विषय में, समाज धर्म और राजनीति के विषय में, काव्यवस्तु और शैली के, छंद और तुक के, कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है।" ऐसा होते हुए भी वे एक साथ संगृहीत है। इसका मुख्य कारण काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है। परिचित और सहकार योजना ने इसे संभव बनाया।

तार सप्तक के प्रकाशन के बीस वर्ष बाद द्वितीय संस्करण की भूमिका सन 1963 में लिखी गयी, जिसमें अज्ञेय लिखते हैं- “इन बीस वर्षों में सातों कवियों की परस्पर अवस्थिति में विशेष अंतर नहीं आया तब की संभावनाए अबकी उपलब्धियों में परिणत हो गयी, सभी बोधिसत्व अब बुद्ध हो गये हैं। पर इन सात नए ध्यानी बुद्धों के परस्पर संबंधों में विशेष अंतर नहीं आया है अब भी उनके बारे में उतनी ही सच्चाई के साथ कहा जा सकता है कि उनमें मतैक्य नहीं है।" स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद उपरान्त जब पाठकों का ध्यान तारसप्तक की ओर आकृष्ट हुआ तो अज्ञेय ने दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक का संपादन किया जिससे प्रयोगवाद आन्दोलन के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, तार सप्तक का संपादन जिस भाव भूमि को आधार बनाकर किया गया उसकी निर्मिति छायावाद से ही आरम्भ हो गयी थी, अज्ञेय ने इस प्रवृत्ति को सही समय पर पहचान कर काव्य आन्दोलन का रूप दे दिया। तीसरा सप्तक की भूमिका में इन्होने लिखा है- 'तार सप्तक एक नयी प्रवृत्ति का पैरवीकार मांगता था इससे अधिक विशेष कुछ नहीं ।" इस नये प्रवृत्ति के विषय में बहुत कुछ बाते तार सप्तक के वक्तव्य में लिख देते है- कविता ही कवि का परम वक्तव्य है।" या “कवि का कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है" वह सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं है व्यापक है यह सत्य व्यक्ति सत्य और व्यापक सत्य की दो पराकाष्ठाओं के बीच कई स्तरों में व्याप्त है।

तारसप्तक के वक्तव्य में अज्ञेय ने आज के कवि की समस्याओं का प्रकाशन किया जिनमें प्रमुख समस्याएं - काव्य विषय की, सामाजिक उत्तरदायित्व की, संवेदना के पुनः संस्कार की और कवि कर्म की, साधारणीकरण और संप्रेषण की समस्या आदि हैं, ये समस्याए ही कवि को प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करने वाली सबसे बड़ी शक्ति है। इस संदर्भ में अज्ञेय ने लिखा है- “कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है- शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं।" भाषा के कर्तव्य को पहचानने का हिंदी कविता में पहला प्रयत्न था, भाषा के इस सर्जनात्मक प्रयोग की ओर अज्ञेय ने ध्यान दिया और कविता के माध्यम से लिखा- "ये उपमान मैले हो गये हैं, देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कुच।" तार सप्तक में प्रयोग की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य करने के लिए कवि की संवेदना को पाठक तक अक्षुण्ण पहुंचाने के लिए भाषा में नए अर्थ का संचार आवश्यक समझा, इस हेतु प्रयोग के नए-नए स्वरूपों को स्पष्ट किया। तारसप्तक के व्यक्तव्य में अज्ञेय ने लिखा है- प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना रवभाविक ही है, किन्तु कवि अनुभव करता आया है, जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़ कर उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नही हुआ गया या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।" यहाँ अनछुए क्षेत्र का स्पर्श ही प्रयोग का उद्देश्य बन

गया, पूर्व के कवि जिसे कविता का विषय नहीं मानते थे सप्तककाल में उन्हें अन्वेषण का विषय मान लिया गया। अज्ञेय आगे लिखते हैं- भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से अंको और सीधी तिरछी लकीरों से छोटे-बड़े टाइप से सीधे या उलटे अक्षरों से, सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुंचा सके।" आगे लिखते है- "जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे इसकी संपूर्णता में पहुंचाया जाय जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।"

प्रयोगशीलता के पीछे जो दर्शन काम कर रहा था वह था मनोविश्लेषणवाद, क्योंकि कला सर्जन के मूल में कलाकार की दमित वासनाओं एवं कुंठित काम प्रवृतियों का योग रहता है। कलाकार अपनी काम वासना को समाज के भय से या अन्य कारणों से व्यक्त नहीं कर पाता वही वासना यौन विकृतियों के रूप में या मानसिक रोग के रूप में व्याप्त होती है ।

अपने व्यक्तव्य में अज्ञेय लिखते हैं –आधुनिक युग का साधारण मानव यौन वर्जनाओं का पुंज है .... आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुंठित हैं; उनकी सौन्दर्य चेतना भी इसी से आक्रांत है, उसके उपमान सब यौन प्रतीक्कार्थ रखते हैं। काव्य रचना में प्रयोग कर के अज्ञेय ने जहाँ नयी रचना पद्धति का आविष्कार किया, वही उन्होंने विषय वस्तु के क्षेत्र में भी क्रांति की। इन्होने चेतन मन के स्थान पर अवचेतन स्तर की सामग्री को प्रस्तुत करते हुए कुंठाओं, वासनाओं गुह्य भावनाओं एवं असामाजिक विचारों की अभिव्यक्ति निर्द्धन्द्ध रूप में की, अज्ञेय लिखते हैं- कवि के लिए इस परिस्थिति में और भी कठिनाईयां हैं। एक मार्ग यौन स्वप्न-सृष्टि का दिवास्वप्नों का है, उसे वह नहीं अपनाना चाहता। फिर वह क्या करे?? यथार्थ दर्शन केवल कुण्ठा उत्पन्न करता है। वास्तव की बीभत्सता की कसौटी पर चाँदनी खोटी दिखती है।... और प्रेम? एक थका माँदा पक्षी, जो साँझ घिरती देखकर आशंका से भी भरता है और साहस संचित कर के लड़ता भी जा रहा है।"

तारसप्तक के बाद अज्ञेय ने 'प्रतीक' (1947) पत्रिका का संपादन किया, दूसरे सप्तक की भूमिका में वे लिखते हैं प्रयोग का कोई 'वाद' नहीं है, हम वादी नहीं रहे हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी प्रकार कविता का कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना ।" कहा जा सकता है तारसप्तक ही प्रयोग बाद का प्रस्थान बिंदु है । प्रयोगवाद नाम से अज्ञेय की असहमति थी जिसको दूसरे सप्तक की भूमिका में स्पष्ट कर देते है। असल में अज्ञेय प्रयोगवाद नाम से बचना चाहते थे और पाठक प्रयोगवाद नाम रखना चाहता था तारसप्तक और प्रतीक के प्रकाशन से प्रयोग शब्द बार-बार पाठक के सामने आने लगा। अतः अज्ञेय के न चाहते हुए भी 'प्रयोगवाद' काव्यरूढ़ होकर प्रचलित हुआ ।

अज्ञेय की काव्य - यात्रा

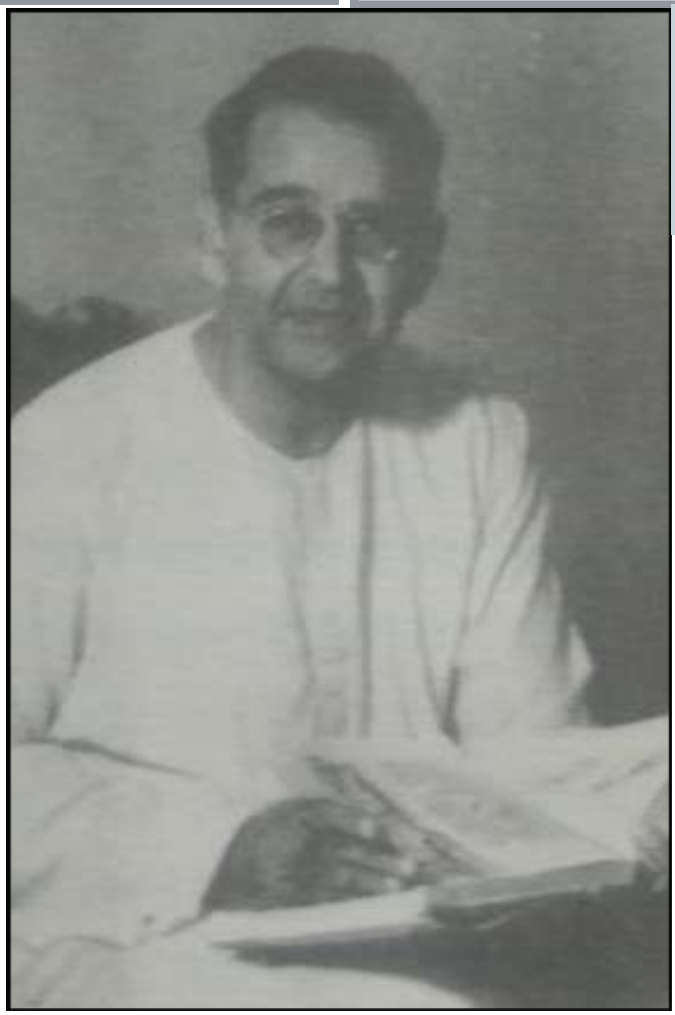

बृजेश गिरि
प्रवक्ता, जैश किसान इन्टर कॉलेज
घोसी, मऊ

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन'अज्ञेय' प्रयोगवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। वैसे नयी कविता को भी साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने श्रेय अज्ञेय को ही जाता है। साहित्य अकादमी व ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत अज्ञेय एक महत्त्वपूर्ण साहित्यकार के साथ-साथ व्याख्याता,सत्यान्वेषी पर्यटक, चितंक, विचारक व एक अच्छे चित्रकार भी थे। अज्ञेय को कवि के अतिरिक्त कथाकार,ललित निबंधकार व सम्पादक के रूप मे जाना जाता है। लेकिन मुख्य रूप से अज्ञेय कवि ही हैं और हिन्दी साहित्य जगत में इनको कवि के रूप में ही सर्वाधिक ख्याति और प्रतिष्ठा मिली।

एक बार विष्णुकांत शास्त्री ने अज्ञेय से यह पूछा था कि वह अपने-आप को क्या मानते हैं ?उपन्यासकार या कवि। शास्त्री जी के बहुत अनुरोध करने पर उन्होंने शास्त्री जी को बताया था कि"पहले मैं अपने को मूलतः कवि मानता था।फिर लगने लगा कि मैं मूलतः उपन्यासकार हूँ। अब फिर मुझे लगता है कि नहीं,मैं कवि ही हूँ। उपन्यास, कहानी, नाटक भी मैं कवि के रूप में ही लिखता हूँ।"

उनकी रचनाएं कालजयी हैं। अज्ञेय की पहली कविता 16 वर्ष की अवस्था में सन् 1927 में प्रकाशित हुई थी। भग्नदूत(1933), चिंता(1942), इत्यलम् (1946), प्रिजन एण्ड अदर पोएम्स(1946,अंग्रेजी में), हरी घास पर क्षण भर(1949), बावरा अहेरी(1954), इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये(1957), अरी ओ करुणा प्रभामय(1959), आँगन के पार द्वार(1959), पूर्वा(1965) , सुनहले शैवाल(1965), कितनी नावों में कितनी बार(1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ(1969), सागर-मुद्रा(1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ(1973), महावृक्ष के नीचे(1977), नदी की बांक पर छाया(1982), ऐसा कोई घर आपने देखा है(1986) और मरुथल(1995) अज्ञेय के उल्लेखनीय काव्य-संग्रह हैं। यदि ध्यान से देखा जाए तो अज्ञेय की काव्य-यात्रा चार चरणों से होकर गुजरती है । डॉ.विद्यानिवास मिश्र के अनुसार"पहला है विद्रोह और हताशा का,दूसरा है अपने भीतर और शक्ति-संचय का,तीसरा है बिना किसी आशा के आत्मदान में सार्थकता पाने का और चौथा है मानवीय दायित्व-बोध के साथ-साथ भारतीय अस्मिता की पहचान का। पहले चरण की रचनाएं हैं चिंता और इत्यलम्, दूसरे चरण में आती हैं हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी और इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये की कविताएं, तीसरे में अरी करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार तथा कितनी नावों में कितनी बार की कविताएं और चौथे में क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागर-मुद्रा और पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ की कविताएं।"

अज्ञेय की 'भग्नदूत' का आधार प्रणय संबंध है। इसमें एक तरफ प्रेमी की प्रणय याचना है तो दूसरी तरफ भावुकता से संपृक्त स्नेह का चित्रण भी । बच्चन सिंह लिखते हैं कि" 'भग्नदूत' में मुख्यतः गदहपचीसी का प्रयण निवेदन है।मधु की मोहक छलना में उलझा हुआ कवि कहीं दया की भीख माँगता है तो कहीं करुणा की।"अगले काव्य-संग्रह 'चिन्ता' में प्रणय का दार्शनिक पक्ष दिखाई देता है। यह दो खण्डों में है-विश्वप्रिया और एकायन। विश्वप्रिया में पुरुष के उद्गार हैं और एकायन में नारी के। इसमें पुरुष के प्रति नारी पूर्ण रूप से समर्पित है। इस पर फ्रायड के अभिव्यक्ति सिद्धांत का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'इत्यलम्' चार खण्डों में है। पहले खण्ड 'बन्दी के स्वप्न' की कविताएं सामान्य रूप से राष्ट्रीय भावनाओं से संपृक्त हैं। दूसरे खण्ड 'हिय हारिल' की अधिकांश कविताएं रोमांटिक ढंग की हैं वहीं तीसरे खण्ड 'वंचना के दुर्ग' में कवि खुद से ही मुक्त होने के लिए ऐंटी-रोमांटिक होने की कोशिश करता है। पहले चरण की उक्त रचनाओं में कवि आत्मपीड़ा की अवस्था में हताशा का शिकार होता है और उसके अन्दर विद्रोह की भावना पैदा होती है। हालांकि शुरू की इन रचनाओं को लेकर अज्ञेय की स्थिति कवि के रूप में उपेक्षित सी रही है। बच्चन सिंह ने अज्ञेय की अन्तःयात्रा का वास्तविक आरम्भ 'हरी घास पर क्षणभर' से माना है।अज्ञेय को कवि के रूप में स्थापित करने में इस काव्य-संग्रह का महत्वपूर्ण योगदान है।'नदी के द्वीप' कविता इसी संग्रह में संकलित है। इसमें अज्ञेय ने अपने जीवन दर्शन का चित्रण किया है।'हरी घास पर क्षणभर' में अज्ञेय ने प्रणय निवेदन,प्रकृति चित्रण और जीवन दर्शन की नई भूमि तैयार की है।

अज्ञेय की जीवन-यात्रा जैसे-जैसे आगे बढ़ती वैसे-वैसे उनके आत्म-चिंतन का दायरा बढ़ता जाता है और फिर वो 'बावरा अहेरी' जैसे काव्य-संकलन की रचना करते हैं।'बावरा अहेरी' को सूर्य का प्रतीक माना गया है।इस संकलन में कवि अपनी लघुता को विराटता में समाहित कर देता है।समर्पण की यह भावना 'दीप अकेला' कविता में देखने को मिलती है।

'हरी घास पर क्षण भर' और 'बावरा अहेरी' काव्य संग्रह अज्ञेय की अग्रसर जीवन-यात्रा या यूँ कहें कि काव्य-यात्रा के मध्यबिंदु हैं।इन काव्य संग्रहों में वस्तु और भाषा, दोनों दृष्टि से एक परिपक्व अज्ञेय दिखाई देते हैं।आरम्भ की रचनाओं में अभिव्यक्त प्रेम के प्रति तीव्र आसक्ति,आस्था और समर्पण में परिवर्तित हो जाती है और आत्मचिंतन को विस्तार मिलता ।भाषा को ऊबड़-खाबड़पन व अतिशय अलंकरण से मुक्ति मिलती है।लोक से ग्रहित नए बिम्ब और प्रतीक भाषा की सहजता के कारण अपेक्षित अर्थ ग्रहण करते हैं।बाद के काव्य-संग्रह 'अरी ओ करुणा प्रभामय' और 'आँगन के पार द्वार' बौद्ध और जैन दर्शन से प्रभावित हैं।'आँगन के पार द्वार' तीन खण्डों में है-अन्तः सलिला, चन्द्रकांतशिला और आसाध्य वीणा।।'आसाध्य वीणा' अज्ञेय की लम्बी कविता है और इसका आधार एक जापानी लोक कथा है।इसमें अहं का विसर्जन है,समर्पण के द्वारा ही 'असाध्य वीणा का' कलावंत वीणा को साधता है।कला और भाषा की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ रचना है इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है।

'कितनी नावों में कितनी बार','क्योंकि मैं उसे जानता हूँ',सागर मुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ,महावृक्ष के नीचे आदि रचनाओं में अज्ञेय की काव्य दृष्टि का उत्तरोत्तर विकास दिखाई देता है और इन रचनाओं में वो अपनी मूल संवेदना को विस्तार देते दिखाई देते हैं।अज्ञेय ने अपनी कविताओं में ग्रामीण लोक विश्वासों, पौराणिकमान्यताओं, प्राकृतिक, वैज्ञानिक और युगीन जटिलताओं के विविध प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनके बिम्ब उनकी कविता को सहज और अर्थग्राहिणी बनाते हैं।हालांकि अज्ञेय की रचनाओं पर आलोचकों व अध्यापकों द्वारा दुरूहता के आरोप लगे हैं। एक बार ओम निश्चल ने बात-चीत में उनसे इस सम्बन्ध में सवाल किया था।जबाव देते हुए अज्ञेय ने कहा था कि"यह तो सच कि बहुत से अध्यापक लोग ऐसा पढ़ा रहे हैं कि अज्ञेय की रचनाएं दुरूह हैं। मैंने उनकी पुस्तकों में भी प्रायः यह देखा है।लेकिन मैं जानता हूँ कि बहुत पाठक ऐसे हैं जिनको यह नहीं लगता और इसीलिए कभी-कभी मैं अध्यापकों से कहता हूँ कि जो मैं लिखता हूँ अध्यापक के लिए नहीं लिखता,मैं पाठक के लिए लिखता हूँ।पढ़ाया जाना मेरे लिए कोई गौरव की बात नहीं है, पढ़ा जाना मेरे लिए महत्त्व की बात है।"

अज्ञेय के विषय में विष्णुकांत शास्त्री द्वारा लिखी इन पंक्तियों से अपनी बात समाप्त करता हूँ -"अज्ञेय को जानना अरण्य को जानने के समान ही सहज भी था और दुष्कर भी।वे मिलते सभी से सहज भाव से थे,पर खुलते किससे कितना थे ,यह कहना कठिन है।उनके अन्तरंगतम वृत्त के लोग भी उन्हें क्या जान सके थे?उन्हें जान लेने का गुमान करनेवालों से भी क्या उनके बारे में बड़ी-बड़ी गल्तियाँ नहीं हुईं? मैं तो खैर ,उस वृत्ति की परिधि को कभी नहीं छू पाया था।"कितनी सटीक ,सन्तुलित उक्ति है अज्ञेय की अपने बारे में:

मैं सभी ओर से खुला हूँ
वन-सा,वन-सा अपने आप में बंद हूँ
शब्द में मेरी समाई नहीं होगी
मैं सन्नाटे का छन्द हूँ।

""यह तो सच कि बहुत से अध्यापक लोग ऐसा पढ़ा रहे हैं कि अज्ञेय की रचनाएं दुरूह हैं। मैंने उनकी पुस्तकों में भी प्रायः यह देखा है।लेकिन मैं जानता हूँ कि बहुत पाठक ऐसे हैं जिनको यह नहीं लगता और इसीलिए कभी-कभी मैं अध्यापकों से कहता हूँ कि जो मैं लिखता हूँ अध्यापक के लिए नहीं लिखता,मैं पाठक के लिए लिखता हूँ।पढ़ाया जाना मेरे लिए कोई गौरव की बात नहीं है, पढ़ा जाना मेरे लिए महत्त्व की बात है।"- अज्ञेय

मेरी पसन्द की अज्ञेय की कविताएं

नमिता राकेश

दूर्वाचल

पार्श्व गिरि का नम्र, चीड़ों में डंगर चढ़ती उमंगों-सी।
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा।
विहग-शिशु मौन नीड़ों में।
मैंने आँख भर देखा।
दिया मन को दिलासा-पुनः आऊँगा।
(भले ही बरस-दिन-अनगिन युगों के बाद!)
क्षितिज ने पलक-सी खोली, तमक कर दामिनी
बोली-
'अरे यायावर! रहेगा याद?'

माफ्लङ् (शिलङ्)
22 सितम्बर, 1947

मुझे तीन दो शब्द

मुझे तीन दो शब्द कि मैं कविता कह पाऊँ।

एक शब्द वह जो न कभी जिह्वा पर लाऊँ,
और दूसरा : जिसे कह सकूँ
किन्तु दर्द मेरे से जो ओछा पड़ता हो।

और तीसरा : खरा धातु, पर जिस को पा कर पूछूं-
क्या न बिना इस के भी काम चलेगा ? और मौन
रह जाऊँ।
मुझे तीन दो शब्द कि मैं कविता कह पाऊँ।

रीवाँ
21 फरवरी, 1955

आगन्तुक

आँख ने देखा पर वाणी ने बखाना नहीं।
भावना ने छुआ पर मन ने पहचाना नहीं।
राह मैंने बहुत दिन देखी, तुम उस पर से आये भी,
गये भी, -कदाचित्, कई बार-
पर हुआ घर आना नहीं।

डार्लिंगटन हॉल, टॉटनेस
18 अगस्त, 1955

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस: 8 मार्च

झारखंड में स्पेनिश महिला यात्री के साथ हुआ दुर्व्यवहार एक समाज व संस्कृति के रूप में हम सबके लिए अत्यंत शर्मनाक घटना है . अतः हम इस सादे काले पन्ने के द्वारा इस घटना पर अपना क्षोभ व दुःख प्रकट करते हैं.

प्रेम में पार्वती होना

र श्मि धा रि णी ध रि त्री

सुधिजनों को धारिणी का सादर प्रणाम

बसंत का आगमन और मौसम में फाल्गुनी रंगों का घुलना और नवजीवन की सुगंध और साथ ही महाशिवरात्रि का आगमन जो साक्ष्य है मिलन प्रकृति का तत्व से ।
अगर कोई मुझसे पूछे कि मुझे शिव पार्वती की कथा में सबसे अधिक क्या प्रिय है तो, वो उनके विवाह से भी अधिक पार्वती का शिव से साक्षात्कार जो मानव शरीर के लिए असंभव था । पार्वती ने उसे संभव बना दिया। वो कल्पना भी मुझे ट्रांस में ले जाती है। अगर ये मान भी लें कि वो सती का पुनर्जन्म नहीं थीं, फिर भी ब्रह्मांड ने उन्हें चुना था। उनके साथ वो सारी अनुभूतियाँ जो बाल्यकाल से उनके साथ होती आई थीं। वो भी मानव जनित जीवन के उपापोह, अपनी माता के वात्सल्य, और अनदेखे शिव के प्रति प्रेम में झुलती रहीं। समस्त ब्रह्मांड उनका मार्ग प्रशस्त करता रहा। सारे व्यवधानों के बाद भी जब ऋषि दधीचि उनका मार्ग प्रशस्त करते हैं तो पार्वती का सबसे पहले स्वयं से साक्षात्कार होता है, यही मार्ग हमें भी दिखलाता है कि अगर ईश्वर को सचमुच पाना है तो पहले स्वयम् से साक्षात्कार होना चाहिए।

पार्वती ने सबसे पहले इस पंचतत्व के बने पंचकोश को पार किया अन्नमय कोश जो जो कुछ हम खाते हैं वही हमारा शरीर निर्माण करता है। प्राणमय कोश जो हमारे श्वास लेने की सही विधि से शुद्ध होता है, मनोमय कोश जो हमारे मन को नियंत्रण में रखने से चेतना से पार होता है, विज्ञानमय कोश, जब हम अपनी अंतरदृष्टि को पा लेते हैं, ये जगत माया लगता है हम इसको पार कर जाते हैं और अंत में आनंदमय कोश जिसको ध्यान अवस्था से पाया जा सकता है। बहुत विरले होते हैं जिनको पंचकोश को पार करके परम ब्रह्म की अनुभूति होती है ।इसी प्रकार पार्वती ने अपने सातों चक्र को मुक्त किया। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्त्रधार चक्र ।

कैसा रहा होगा वो पल जब उन्होंने शिव को प्रथम बार देखा योगी रूप में ध्यान मग्न, उनकी वर्षो की वेदना क्या शिव की वेदना नहीं थी। क्या वो अलग थे। पार्वती साक्षात प्रमाण हैं, जब निजी स्वार्थों से उपर उठ कर, दैनिक भोगविलास में आकंठ डूबे शरीर को छोड़ कर स्वयम् की उन्नति करते हैं, मोह आसक्ति वासना को पार करते हैं अपनी वाणी कर्म से जीव मात्र के लिए क्षति न पहुंचाये, करुणा को अपना मार्ग चुनते हैं और ये करुणा स्वतः हृदय में प्रकट होती है तो वो ब्रह्मांड की शक्ति भी हमारी तरफ आकर्षित होती है। क्योंके हर आत्मा का अंतोगन्तव्य उसी ब्रह्म से मिलना है।

जिस क्षण हम सृष्टि को, उसमें घटने वाली घटनाओं को साक्षी भाव से देखते हैं, परहित के लिए स्वयम् का त्याग कर देते हैं तो शिव वो ईश्वर वो ब्रह्मांडीय शक्ति भी हमसे मिलने को उतनी ही व्याकुल होती है। यही शिव शक्ति के मिलन का रहस्य है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड ऊर्जा और तत्व के आपसी बंधन से बना है। केवल कोई एक अकेला श्रेष्ठ नहीं है। सृष्टि के लिए दोनों को साथ आना पड़ता है तभी सृजन संभव है। यही सृष्टि का नियम है। पार्वती का शिव से मिलन समस्त मानवीय शरीर की बाधाओं को पार करके ईश्वर हो जाने का प्रतीक है

शिव का पार्वती हो जाना, पार्वती का शिव हो जाना ही महाशिवरात्रि है। जिस तरह दो अलग अलग बुलबुले आपस में एक हो जाते हैं तो ये बताना कठिन होता है कि कौन सा हिस्सा किस पानी से आया था। उसी तरह जब आत्मा का संबंध शिव रूपी ब्रह्म से हो जाता है तो दोनों की भिन्नता बताना असंभव है।

पार्वती का तप मानवीय परकाष्ठाओं को पार करने का प्रतीक है। महाशिवरात्रि प्रतीक है मूलाधार में जकड़े केवल भोजन उत्सर्जन और प्रजनन के चक्र में फंसे निम्नतम जीव से उन्नति करते हुए चेतना के उच्चतम स्तर को प्राप्त करना, अनन्त ब्रह्मांड की खोज, ज्ञान विज्ञान की उन्नति, सृष्टि में करुणा हो जाना। जहाँ ये कह सकें

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

जहाँ संसार की सभी वनस्पति पुष्पों के रंग सुगंध फाल्गुनी शिव पार्वती बन जाएँ और चारों तरफ आनंद शांति सौहार्द के रँग बिखेर कर बोलें - हर हर महादेव

डॉ एस.पी सती और सतोपंथ हिमानी

सुप्ताल, गाँव-बंगाली चमोली

प्रसिद्ध पर्यावरणविद डॉ एस.पी.सती जी पर्यावरण के हर पहलु को अपनी नज़र से देखते हैं. ऋषि मनीषी हैं सरल स्वभाव वाले डॉ सती जी जब हिमालय की गोद में होते हैं तो उसकी नैसर्गिक सुषमा में खो जाते हैं.

सतोपंथ हिमानी भारत के उत्तराखण्ड राज्य में स्थित एक हिमानी (ग्लेशियर) है। अलकनन्दा नदी इसके चरणों में आरम्भ होती है। सतोपंथ हिमानी गढ़वाल हिमालय के नीलकंठ पर्वत की पश्चिमोत्तर ढलान से शुरु होती है।

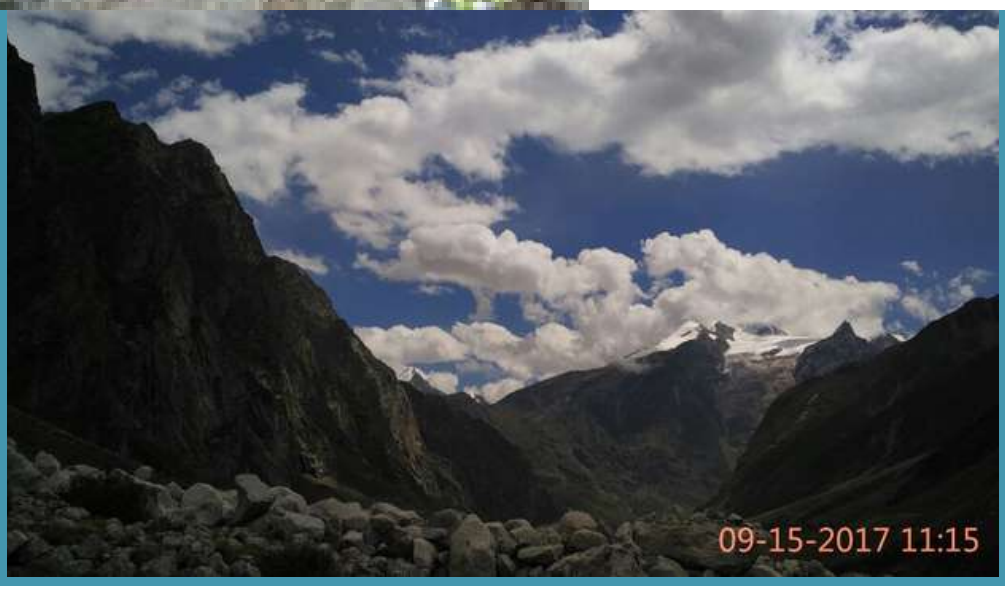

लोक कथा - जलांध

गीता कैरोला
उत्तराखंड

चौमासा हमेशा त्योहारों की आमद के साथ बीतता है।श्राद्ध के पंद्रह दिनों में पितृ पूरे साल का भोजन ज़ीम ने के साथ साल भर का राशन बांध कर विदा हो गए थे।आस पास के गांवों के बृत्ति ब्राह्मणों के साथ घर के बड़े बूढ़े कच्चे बच्चे सब श्राद्धों का खाना खा के तृप्त थे।खेतों सग्वाडो में कद्दू पक कैं पीले पड़ गए। ककड़ियां पीली लाल हो गयी। दीवाली की धूम के बाद माँ चाचियाँ दिन भर उड़द की दाल को सिलवटे में पीस कर ककड़ी भुज़ेला और लौकी की बढ़िया बनाकर सूखने के लिए पूरा गुठ्यार आंगन भर देती थी। दानो से भरे मक्की को छिलकों से बाँध कर दीदी ने छज्जा के ऊपर रस्सी बांध के सूखने के लिए लटका दिए थे। सुबहें और रातें सर्दीली हो गयी।पहाड़ियों पर ऊगा हरा घास पिंगलाने के बाद सूखने लगा था। रातें साफ़ जगर मगर तारों से भरे नीले आसमान से टपाटप पाली गिराने लगी थी। स्लेट की छतें रात भर टपके पाले से भीगी टप टप टपकती रहती। ये दिन त्योहारों की खुनक से भरे हम बच्चों को बौराये रखते थे।

दूर पहाड़ों से घाम तापने भाबर की तरफ उड़ान भरते मल्यो की डारों झुंड से आसमान भरा रहता।डार की डार मल्यो आते और जिन खेतों में गेहूं की बुआई हो जाती उनमे डाले गेहूं के बीज को मिनटों में चुग जाते। लोग जोर जोर से ह्वा ह्वा करते उन्हें उड़ाने की कोशिश करते तो पूरी मल्यो की डार एक खेत से उड़ कर दूसरे खेत में बैठ जाती। दादी आंखो के ऊपर हथेली की छाया बनाती आंसमान की तरफ देखते रोज कहती हे राम बाबा शिवजी के कैलाश में पाला जम गया होगा। मल्यो की डार घाम तापने भाबर को जा रही है। उन दिनो हम बच्चे शाम ढलते ही ठण्ड के मारे बिस्तरों में दुबक जाते थे। दादी हमे बरजती "अगर तुम चुपचाप रहोगे शोर नहीं करोगे तो आज मैं तुमको पितरों की कहानी सुनाऊँगी ।हम सब अपना ओढ़ना समेटे दादी को घेर कर बैठ जाते । तो सुनो मेरी पोथलियों ये बीते जमानो की बात है। पुराने ज़माने में ऐसा होता था जब परिवार का कोई भी सदस्य मर जाता वो जलाने के बाद भी लौट कर अपने घर कुशल बात लेने आता जाता रहता।

दादी मरने के बाद केवल औरतें ही आती थी कि आदमी भी आते थे। मेरी जिज्ञासाओं का अंत ही नही था। दादी ने पहले कुछ सोचा फिर बोली "बाबा मैने आदमियों के बारे में ऐसी कोई कथा सुनी तो नहीं है। हे रामां मरने के बाद भी अपने बच्चों गाय बछिया खेत खलिहान की चिंता औरतों को ही ज्यादा रहती होगी ये पक्की बात है। जिसे चिंता होगी उसे कहां मुक्ति मिलेगी। हम औरतों के भाग में मरने के बाद भी चैन कहां होता है" दादी ने गहरी सांस ली और बोली तुम आगे की कथा सुनो

एक बार की बात है वो सामने वाले अमेली के डाण्डे के पार किसी गांव में चन्दना नाम की लड़की की माँ मर गयी। चंदना को भारी शोक हो गया वो दिन रात अपनी माँ को याद करके रोती रहती।अपने शोक में उसने खेतों में काम करना भी छोड़ दिया। गोठ में बंधी गाय बछिया भूख प्यास से मैं मैं करके रंभाती रहती। अड़ोस पड़ोस की चाची ताई गाय बाछी को घास पानी दे देते। पर ऐसा कब तक चल सकता था।

पहाड़ों में सबके अपने भी ढेर सारे काम होते हैं। गांव के सब लोगों के खेतों में धान की गुड़ाई निबट गयी इधर चंदना के खेतों में घास पात वैसे ही जमा हुआ था। एक दिन सुबह उठ कर चंदना ने देखा कि उसके सारे खेतो में गुड़ाई हो गयी। उसे बहुत आश्चर्य हुआ कि रातों रात उसके खेतों में गुड़ाई किसने की। गोठ में गाय बछिया के आगे मुलायम हरी घास का ढेर लगा था।उनका पानी पीने का बर्तन पानी से भरा था। उस दिन के बाद कोई रात को चंदना का हर काम चुपके से कर जाता।अब चंदना के खेतों का हरेक काम गुड़ाई निराई कटाई मण्डाई गाँव में सबसे जल्दी होने लगी। जो भी ये काम करता वो रात को चुपके से आता इस लिए चंदना काम करने वाले व्यक्ति को चाह कर भी देख नहीं पाई थी।लोग चांदना की बढ़ाई करते वाह वाह चंदना तो अपनी माँ के मरने के बाद बहुत किसाण हो गयी।

एक दिन चंदना ने सोचा जो भी मेरा काम करता है पकड़ कर उसको कुछ खिलाना चाहिये। उसने हलवा बनाया और खेत के किनारे एक घनी झाड़ी में छिप कर बैठ गयी। देखती क्या है कि उसकी माँ अंधेरे से निकल कर खेत में आई और काम निबटाने लगी। हे राम बाबा जनानी का प्राण बेटी पर अटका था।

चंदना अपनी मां को देख कर बहुत खुश हो गई माँ माँ करती झाड़ी से निकल आई।दोनों माँ बेटी एक दूसरे के गले लग कर रोने लगी। दोनों ने मिल कर हलवा खाया और काम करने लगी। होते करते दिन बीतने लगे। चन्दना की मां रात को आती सुबह धार में भोर का तारा आते ही चली जाती। एक दिन फूल फटक की जुन्याली रात में माँ चंदना से बोली हे बाबा बहुत दिनों से सिर में खुजली हो रही है जरा मेरे सिर में जुए देख दे। जैसे ही चंदना ने माँ के बालो में हाथ लगाया उसे मा के बदन से मांस जलने की तेज बदबू आई। वो वाक वाक करके उबकाने लगी बोली "दूर हट माँ तुझसे जलांध आ रही है। माँ को चन्देना के इस व्यवहार से बहुत बुरा लगा। वो रोते हुए बोली "मैंने तुझे पैदा किया अपना दूध पिलाया पाला पोषा सारी जिंदगी तेरे सुख दुःख में शामिल हुई और आज तुझे मेरे शरीर से जलने की बदबू आ रही है। मै जा रही हूं आज से मै कभी लौट कर नहीं आउंगी।

चंदना की मां ने श्रापि दिया "आज के बाद जिन लोगों की मृत्यु हो जायेगी वो कभी लौट कर नहीं आयेंगे"। बस बाबा कहते है उस दिन से कोई मेरा हुआ व्यक्ति दुबारा लौट कर नहीं आया। परिवार में लोगों के जिंदा रहते हम उन्हे प्यार करते है उनका मान करते है मरने के बाद उन्हें जब जलायेंगे तो उनसे चिरान्ध तो आएगी ही न। उस दिन से पितृ बुरा मान गए। जो गए सो कभी लौट कर नहीं आए। उसके बाद किसी ने अपने मरे हुए प्रिय जनों को कभी नही देखा। कहते है वो पितृदेवता बन जाते है। साल में एक बार नई फसल होने पर हम अपने पुरखों की जमीन से उगाए अन्न में से उनके हिस्से का नवान्न निकालते है। जो अनाज हम अलग से पुरखों के नाम पर रखते है उसे तो बामण दादा जी ले जाते है। हमारे पितृ थोड़ी खाते होंगे उनके बच्चे खा देते होंगे। अपनी देखी बात को कह कर मैंने खुद को हलका किया। जानती थी मेरे इस तरह के प्रश्नों के जवाब में दादी कोई ज़बाब ना दे कर मेरी पीठ पर जरूर एक मुक्की मारेगी उसने अपना रोज का काम निबटाया। उस नीम अंधेरे में दादी ने अपने दोनो हाथ जोड़ कर माथे से लगाए किसी अनाम अनदेखे अदृश्य की तरफ मुंह उठा कर फुफुसाई हे पितृ देवता हे भूमि के भूमिया हे खोली के गणेशा हे नागरजा हमारे गांव गैली की जंगल पानी की गोठ में बंधे जीवों की पौन पंछियों की रक्षा करो महराज रक्षा करो।